અ૦યુ.૮૨

# शाश्वत धर्म

धर्म की विविधा में शाश्वतता का प्रवर्तक
हिन्दी मासिक

२२/५

अहिंसा प्राणि-मात्र का माता की भांति पालन-पोषण करती है, शरीर रूपी भूमि में सुधा-सरिता बहाती है, दुःख-दावानल को बुझाने के निमित्त मेघ के समान है और भव-भ्रमण रूपी महारोग के नाश करने में रामबाण औषधि है।

---श्रीमदविजय राजेन्द्र सूरीश्वर जी म. सा.

वर्ष : उन्तीस अंक : ८

नव-वर्ष पर शाश्वत धर्म परिवार की ओर से
हार्दिक शुभ-कामनाएं

# शाश्वत धर्म के संरक्षक

शा. ओटमल वेलाजी कांकरिया
ग्राम-सुरा (राजस्थान)
पो. बाकरारोड़

शा. ताराचन्द, फूटरमल
फोजमल, भानाजी वेदमूथा
पो. आहोर (राजस्थान)

कटारिया संघवी भवरलाल
उगमचन्द वीरेन्द्रकुमार
राजेन्द्रकुमार
बेटा-पोता तोलाजी
पो. धाणसा (राजस्थान)

शा. तिलोकचन्द, नरसींगमल,
पुखराज, परखचन्द, सांवलचन्द
बेटा-पोता प्रतापचन्दजी
पो. सरत (राजस्थान)

संघवी मिश्रीलाल, हस्तीमल,
समरथमल, हीरालाल, शान्तिलाल,
जिनेशकुमार बेटा-पोता कन्नाजी
कटारिया
पो. जाखल जि. जालोर (राजस्थान)

नेनावा निवासी
श्री जैन श्वेताम्बर सकल संघ
गुरुभक्तगण ग्राम—नेनावा (गुजरात)

श्री समकित गच्छीय
जैन श्वेताम्बर संघ
पो. धानेरा बनासकांठा
उत्तर (गुजरात)

स्व. मयाचन्दजी धूलाजी की स्मृति में
धर्मपत्नी श्रीमती धापूबाई एवं सुपुत्र कुशलराज
व भ्राता निहालचन्द एवं श्रीमती जड़ावबेन
कातरेला बोहरा, आहोर (राजस्थान)

मेहता तेजराज, जयन्तीलाल
राजेन्द्रकुमार अरविन्दकुमार
बेटा-पोता रायचन्दजी जसराजजी
पो. भूती (राजस्थान)

मोरखिया चम्बूलाल, बाबूलाल
रसिकलाल, महेशकुमार, परेशकुमार,
अल्पेशकुमार रूपलकुमार
पुत्र-पौत्र स्व. मोरखिया नानचन्द
मूलचन्दभाई
ग्राम—थराद, बनासकांठा (उ. गु.)

शा. लालचन्द, रवीन्द्रकुमार
राजेन्द्रकुमार, किशोरकुमार
बेटा-पोता दानमलजी जोयलावाला
पो. परली (महाराष्ट्र)

संस्थापक :
प. पू. व्या. वा. आचार्य देव श्रीमद्-
विजय यतीन्द्र सूरीश्वर जी महाराज

# शाश्वत धर्म

धर्म की विविधा में शाश्वतता का प्रवर्तक
हिन्दी मासिक

निर्देशन :
मुनिराज श्री जयन्तविजय जी 'मधुकर'

सम्पादक :
जे० के० संघवी

शुल्क विवरण :
मूल्य : एक प्रति : एक रुपया पच्चीस पैसा
वार्षिक : पन्द्रह रुपये
पंचवार्षिक : इक्कावन रुपये
आजीवन : दो सौ इक्कावन रुपये

सम्पर्क :
'शाश्वत धर्म' हिन्दी मासिक
राजेन्द्र सूरि जैन ज्ञान मन्दिर
नमकमण्डी, उज्जैन (म. प्र.)

अ. भा. श्री राजेन्द्र जैन नवयुवक परिषद्
उद्देश्य
समाज संगठन, धार्मिक शिक्षा प्रचार,
समाज सुधार, आर्थिक विकास.

अखिल भारतीय श्री राजेन्द्र जैन नवयुवक परिषद् द्वारा संचालित
वर्ष : उन्तीस, अंक : आठ, जनवरी, १९८२

परामर्श :

चांदमल मेहता, एडव्होकेट
सौभाग्यमल सेठिया, एडव्होकेट
सुरेन्द्र लोढ़ा
डा. तेजसिंह गौड़
डा. प्रेमसिंह राठौड़
इन्द्रमल भगवानजी

---

# अनुक्रम


१. सूक्ति त्रिवेणी : ३

२. सम्पादकीय : ४

३. जयति जय जगद्गुरु ! : मुनिराज श्री जयन्तविजय जी 'मधुकर' : ५

४. एक भूल, फूल रूप में : मुनि जयानन्दविजय 'विद्याशिशु' : ९

५. श्री धनचन्द्र सूरि कृत : 'धन अनुभव तूठा' : एक विवेचन : शा. इन्द्रमल भगवान जी बागरा : १२

६. जैन धर्म में भक्ति-योग : डा. प्रेमसिंह राठौड़ : १५

७. धर्म : परम्परा नहीं : मुनिश्री लोकेन्द्रविजय जी 'मार्त्तण्ड' : १९

८. शाकाहार : सौभाग्यमल जैन 'वकील' : कविता : २२

९. सेवा-धर्म : मुनिश्री लेखेन्द्र शेखरविजय जी महाराज : २३

१०. एक और २५०० वाँ परिनिर्वाण-महोत्सव : श्री अजित मुनि : २५

११. हर हालात में जीने की हिम्मत करो : कैलाश 'तरल' : २८

१२. महासती ब्राह्मी : (सती परिचय–१) : धर्मप्रिय : २९

१३. समाचार सूचनाएँ : ३१

पूज्य मुनिराज द्वारा जयन्तविजय जी एवं लक्ष्मण विजय जी द्वारा शिष्ट मण्डल को उत्तर भारत की ओर विहार का आश्वासन : ३४

पालीताणा में श्री राजेन्द्र जैन भवन धर्मशाला की नव-निर्मित भोजनशाला का उद्घाटन : ३५

गुरु सप्तमी खोपाली में सानन्द सम्पन्न : जे.के. संघवी : ३७

# सूक्ति त्रिवेणी

## जानकर बोले

**जमट्ठं तु न जाणेज्जा, एवमेयंति नो वए।**

**(जिसके विषय में पूरी जानकारी न हो, उस विषय में "यह ऐसा ही है" ऐसी बात न कहें)**

जिस विषय में हमें पूरी जानकारी न हो, उस विषय में निश्चय पूर्वक कोई बात नही कहनी चाहिये, अन्यथा सुनने वालो को जब अन्य स्रोतों से यथार्थ ज्ञान हो जायगा, तब हमारी स्थिति उपहासास्पद बन जायगी। लोग हम पर विश्वास ही न करेंगे। एक बार विश्वास उठ जाने पर लोग हमारी सच्ची बात भी नहीं सुनेंगे और सुनी भी तो उसे मानेंगे नहीं। इस प्रकार हमारे बोलने का जो उद्देश्य है, वही नष्ट हो जायगा।

अतः श्रेयस्कर यही होगा कि जिस विषय में हमें संशय हो—शंका हो, उस विषय में "यह ऐसा ही है" ऐसी निश्चयात्मक भाषा का प्रयोग न करें; अन्यथा सुनने वाले यदि श्रद्धालु हुए तो उन्हे मार्ग-भ्रष्ट करने के अपराधी हम बन जाएंगे। इससे हमारा भी पतन होगा और दूसरों का भी। अंधे जिस प्रकार अन्धों को मार्ग नहीं दिखा सकते, उसी प्रकार अज्ञानी व्यक्ति भी अज्ञानियों का पथ प्रदर्शन नहीं कर सकते। हमें चाहिये कि बोलने से पहले स्वयं समझें–सदा जानकर बोलें।

दशवैकालिक सूत्र ७/८

['भगवान् महावीर ने क्या कहा ?' से साभार]

# सम्पादकीय

## क्या हम स्वतंत्र है ?

इस दुनिया में हर प्राणी स्वतंत्र होना चाहता है, बंधन में रहना कोई नहीं चाहता। छोटे से छोटे प्राणी को भी अगर किसी में बंद कर दो तो वह भी बाहर निकलने का प्रयास करेगा।

हम सब स्वतंत्रता चाहते हैं, लेकिन प्रश्न यह उठता है कि क्या हम सचमुच स्वतंत्र हैं ?

जीवन में घटने वाली रोज की घटनाओं पर एक दृष्टि करेंगे, तो सहज ही समझ में आ जायेगा कि हमारी स्थिति क्या है ?

जन्म, जरा और मृत्यु का भयानक दुःख हमें सहना पड़ता है। ईष्ट अनिष्ट का संयोग-वियोग हमारे बस की बात नहीं। हमारे नहीं चाहते हुए भी नाना प्रकार के रोगों से शरीर घिर जाता है। इच्छित वस्तु हमसे दूर भागती है।

आज हमारे पास कितनी ही धन-दौलत, नौकर-चाकर, महल-बंगले, या मोटर गाड़ी हो जाये, लेकिन काल के पंजे से छुड़ाने की ताकत किसी में नही हैं, हमारी परतंत्रता का यह पक्का उदाहरण है।

कभी शांति से बैठकर इस परतंत्रता की स्थिति का कारण व उससे छूट-कर स्वतंत्र बनने का रास्ता हमने सोचा ?

शास्त्रकार भगवंत कहते हैं कि कर्मों की कैद में बंधे हुए हमने मिथ्यात्व के नशे में चूर होने से आज दिन तक अपने आपको स्वतंत्र मानने की भूल की है।

सच्ची स्वतंत्रता वही है जिसमें आत्मा के अनंत गुण प्रकट हो जाएं। जहाँ जन्म, मरण, रोग, दुःख, भय, संयोग वियोग आदि कुछ न हो। यह तभी संभव है जब आत्मा सभी कर्मों से मुक्त होकर सिद्धावस्था को प्राप्त करे।

अनेकों भव्यात्माओं ने वीतराग कथित धर्म के मार्ग पर चलकर सच्ची स्वतंत्रता (सिद्ध गति) पायी है। अनेकों आत्माएें आज भी उस राजमार्ग पर मंजिल पाने के लिये अग्रसर हैं एवं भविष्य में भी कई आत्माएें इसी राह को अपना कर अष्ट कर्म क्षय कर स्वतंत्र बनेंगे अर्थात मोक्ष पायेंगे।

आइये, हम भी अनादि काल से मोह राजा की कैद से छूटने के लिए ज्ञानियों के बतलाये मार्ग पर चलकर, जिनकथित आज्ञाओं को हृदय में धारण-कर अष्ट कर्म की बेड़ी को तोड़ने का प्रयत्न करें, यही सच्ची स्वतंत्रता पाने का सही मार्ग है।

जे. के. संघवी

# जयति जय जगद्गुरु !

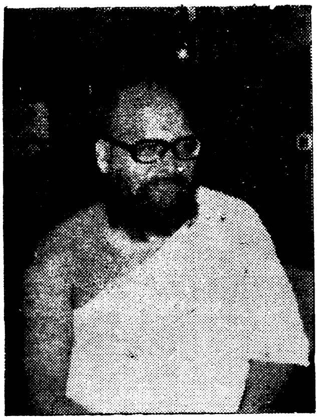

**मुनिराज श्री जयन्तविजय जी 'मधुकर'**

साधक अन्तर की उत्पीड़ित तरंगावलियों में बहता हुआ, भावों की वीथियों में रमण करता हुआ कहता है, हे 'जग गुरु' आप जगत के गुरु हो, अन्धकार रूप अज्ञान के हरण में सूर्य हो, एक वर्ग तथा एक समूह मात्र का हित चाहने वाला तो एकाङ्गी है किन्तु जो विश्व में प्राणी-मात्र का मंगल चाहे, वह 'गुरु' पद से सुशोभित हो तो इसमें आश्चर्य ही क्या है ? प्रत्युत सर्वथा समुचित ही है ।

हे देव ! आपको संसार के गुरु बनने से पूर्व कितनी दुविधाओं, बाधाओं तथा उपसर्गों को सहन करना पड़ा है ? शिखर के समान अन्तरायों, उपसर्गों को सरसव सम माना, भयंकर शूल से कष्टों को आपने फूल-सा मान कर सहन किया ! इष्ट की प्राप्ति में निश्चल, आपने अनिष्टकारक तत्वों के प्रति कभी तनिक भी कलुषित विचार तक नहीं किये । तभी तो विश्ववंद्य विश्वविजेता के रूप में संसार आपकी अर्चना करता है ।

गुरु पद प्राप्त करना तथा उसे यथाविधि निभाना इसमें महान् अन्तर है । जैसा आपका पद वैसा ही परमार्थ तत्त्व से भरा आपका कार्य-किस मापन यष्टि से उसका माप किया जाय ? आपका कार्य अपरिमाण है ।

हे परम कारूण्य ! जब-जब और जहां-जहां आप जगद्गुरु का चैत्य देखता हूँ । तब तब अति उल्लास भरा अति उमंग भरा मैं श्रद्धा से गद्-गद् हो जाता हूँ । चंचल स्वभावों में मानसिक स्थिरता आ जाती है । मन, वचन तथा काया तीनों ही आपके दर्शन सागर में मज्जन करने लगते हैं । "मैं कहां हूं ।" किस वलय में केन्द्रित हूँ । यह मैं सब भूल जाता हूं । जब आपका चक्षुरिन्द्रिय से दर्शन करता हूं ।

आपका दर्शन मात्र ही पर्याप्त है, भव बाधा हरण के लिये, भावों की सरिता बहाने के लिये और स्वभाव में स्थैर्य प्राप्ति के लिये ।

हे देव ! जब भी आपके दर्शन करता हूँ। मेरी रोम राशि पुलकित हो उठती है। प्राचीन, ऐतिहासिक तथा गुरु पद की महानता को बढ़ाने वाले प्रसंग मेरे मानस पटल पर चित्र पट के समान एक के पश्चात् एक चित्रों का क्रम प्रारंभ करते रहते हैं।

हे चरा चर गुरो ! प्राणी मात्र की कल्याण कामना को लेकर जब आपके चरण-कमल पृथ्वी का स्पर्श करने लगे थे, तभी से यह भूमि अपने को धन्य मानने लग गई ! पृथ्वी का कण-कण हर्षित हो उठा था। पृथ्वी पर निवास करने वाले मानव, स्वर्ग के निवासी देवता तथा नाग लोक के नाग कुमार देव प्रसन्न हो उठे थे। जहां-जहां जगद् गुरु के चरण के शुभागमन होता ये अष्ट प्रतिहार्य से गुरु पद की गरिमा को द्विगुणित करते थे।

जगद्गुरु जहां-जहां, जब-जब बैठने की इच्छा करते वहां-वहां तब-तब सुर किन्नर, गन्धर्व नव-नव निधान से सम्पन्न समवसरण की समायोजना करते, अशोक वृक्ष, आकाश से देवी देवता पुष्पवृष्टि करते तथा अभूतपूर्व दिव्य नाद से आपके पधारने का संदेश देते। श्वेत चामर ढुलाये जाते, सिंहासन धन्य हो जाता आपका पावन स्पर्श पाकर, दुन्दुभि नाद से दिग्गज डोल उठते। परिपूर्ण आपके मुखारविंद दर्शन में दैदिप्यमान प्रभामण्डल सहयोग कर देता, जगत जीव को प्रकाश से।

हे देव ! आप 'गुरुणाम् गुरु' हो, क्योंकि यह धरा आपके स्पर्श से धन्य हुई, इतिभीतियों, समूल नष्ट हो गई, सवा सौ योजन पर्यन्त स्वचक्र या पर-चक्र का भय नहीं था, रोगों की उत्पत्ति मिट गई ! अतिवृष्टि, अनावृष्टि, शलभ, मूषकादि उत्पातों से पृथ्वी रहित हो गई।

हे देव ! आपकी देह दृष्टि भी महान् प्रभावक थी ! श्वासोश्वास मधुर सुरभि से सुरभित था, आपके शरीर मंदिर में स्थित रक्त तथा मांस स्वयं के रंग को छोड़कर शुभ आभा वाले हो गये थे ! कारण राग और द्वेष दो ही देह का रंग-रंगीला स्वरूप निर्मित करते हैं। राग रक्त वर्ण का कारक है और द्वेष श्याम वर्ण का जनक है। जब दोनों ही चले गये तो श्वेत वर्ण मात्र सही स्वरूप में स्थित रहा ! चर्म चक्षु वाले प्राणी आपका आहार निहार प्रक्रिया को देख भी नहीं सकते थे। यही परम पावन प्रभु का श्रेष्ठतम अतिशय था।

साधक भाव से भरपूर तथा भक्ति भावना से आल्हादित होकर गुरु के साक्षात्कार में अपने हृदय को तल्लीन कर लेता है। "जय जग गुरु" हे गुरुदेव ! आपकी सदा जय हो ! मेरा मन समर्पण के लिये तड़फ रहा है। आपके गुणानुवाद करने में ही वाणी सार्थक है, मेरा मन आपके चरणों में रमण करना चाहता है यह सब क्यों ? क्योंकि आप ही एक मात्र परमोच्च औषधि के दाता हो जिससे भव भ्रमण का दुस्साध्य

रोग समूल नष्ट हो जाता है। भ्रमणा जहां रहती है वहां भ्रांति रहती है और भ्रांति जहां हो वहां अशान्ति का दर्द बना रहता है, किन्तु आपने अलौकिक रसायण दिया है जिसके सेवन से भ्रांति एवं अशान्ति का दर्द सर्व समाप्त होकर रहता है।

यदि भव रोग है तो भाव उसकी श्रेष्ठ पूततम औषधि है। यदि भव हलाहल है तो भाव अलौकिक अमृत है ! यदि भव महोदधि है तो भाव उसकी उत्तंग तरंगों के मध्य किनारे लगाने वाली शक्तिशाली नौका है यही तथ्य गुरुदेव आपकी वाणी से ज्ञात हुआ है। यह आप ही ने प्रत्यक्ष अनुभूत करके दिखाया भी है। आपके स्मरण मात्र से यह दृश्य नेत्रेन्द्रिय के सामने प्रत्यक्ष दिखाई देता है। वह कनखल नाम का भयंकर बीहड़ वन अपनी भयंकरता तथा विषमता के लिये प्रसिद्ध है। जहां कोई भी प्राणी नर, तिर्यंच जाने में समर्थ नहीं था, यदि किसी ने प्रवेश का दुस्साहस किया भी तो वह काल के कराल का ग्रास ही बन गया, जाते सभी को सभी ने देखा, किन्तु पुन: आते किसी ने किसी को नहीं देखा, उस भयंकर वन में चंडकौशिक नाम का एक क्रूर सर्प रहा करता था, जिसकी विष भरी फुत्कार मात्र से जाने वाला नाम शेष हो जाता था। काल का अतिथि बनाने वाले उस चण्डकौशिक से भय दिग्दिगन्त त्रस्त एवं भयभीत थे !

किन्तु हे शरद् पर्व की ज्योत्स्ना के समान शीतलता प्रदान करने वाले जगद्गुरो आप उस ओर चले ! क्यों ? क्योंकि प्राणि मात्र का कल्याण करना ही आपका परम कर्त्तव्य था ! सवि जीव करूं शासन रसी। परमोत्कृष्ट भाव वाले मेरे प्रभु। आप ही हो ! एक नहीं अनेक चण्डकौशिक की धधकती ज्वाला को प्रशान्त शीतल वारिका सींचन करने की क्षमता आपके अतिरिक्त अन्य किसमें हो सकती है ? इसी हेतु तो उस बीहड़ भयंकर वन की ओर चले थे आप....!

हे जगत् गुरु। आप स्वयं उपस्थित हैं चंड कौशिक सर्व साधारण प्राणी समझ, कर आपकी तरफ भी जहर भरी फुत्कार छोड़ने लगा तथा देखने लगा, उसका अपरिहत परिणाम कि मेरे भयंकर विष ज्वाल से यह कैसे बच सकता है ? किन्तु अरे ! चंडकौशिक हतप्रभ हो गया, उसने देखा उसके शक्ति भरे फुत्कार से आपका कुछ भी नहीं बिगड़ा उसने अपनी अपरिमित शक्ति तथा साहस से आप पर प्रहार कर दंश किया, किन्तु यह क्या गंगा उल्टी बहने कैसे लगी ? रक्त की दुनिया में विचरण करने वाले चंडकौशिक ने देखा रक्त के स्थान पर श्वेत दूध की धार क्षीर सागर से निकली सरित की धार की तरह प्रवाहित हो उठी, वह दिग् विमूढ़ हो गया ! देखा तो क्या उसने कभी ऐसा किसी लोक में सुना भी नहीं था और उसी क्षण जगद्गुरु के मुखारविंद से अमृत की अजस्र-धारा प्रवाहित हो उठी ! अमृत वर्षा में मधुर वीणा का स्वर बज उठा, चंडकौशिक शान्तं शान्तं...!

विचित्र इन्द्र जाल की माया है क्या ? विष के बदले में अमृत ! मृत्यु के स्थान पर जीवन का झंकार, फुत्कार के जवाब में शान्ति ! यह विरोधाभास कैसा ? और चिन्तन करता चण्डकौशिक तत्काल शान्त हो गया !

ओह ! मैं जान गया प्रभु ! आप जगद्-गुरु ! जग-त्राता आप ही हो ! क्षमा करो ! त्राण करो !! मैं आपके चरणों में मेरा सर्वस्व समर्पण करता हूं !!! जब-जब हृदयाकाश में ज्ञान की चेतना जागृत होती है मन स्वभाव सागर में गंभीर गोते लगाना प्रारंभ कर देता है। तब भव भयंकर रोग की भावरूप संजीवनी अपना जादुई असर करने लगती है !

देव भव की हारावलि अत्यन्त विकट है। इस भावाटवि रूप ऊखर में चिर समय पर्यन्त भी भावों की लतिका उर्वर नहीं हो पाती। कर्मों की प्रकृति विचित्र हुआ करती है। मधुर स्पर्श करके हत्या करती है ! कर्म विकृतियों इन्द्रियों की संतुष्टि पर साधक का सर्वस्व हरण करने वाली मधुरावरणा है। भव माया ! चैतन्य प्रभा का हरण करने वाली यह भव माया ज्योति पुञ्ज के सामने आवरण रूप में सदा ही खड़ी रहती है।

कर्म की गुणात्मक वृद्धि विचित्र है, मूल में आठ यही आगे जाकर एक सौ अठावन तथा पुनः गुणात्मक विस्तार कि जिसमें चेतना की सर्व शक्ति का हरण हो जाता है। इन आठ में चार घाति कर्म हैं जो आत्मगुणों का ही नाश करते हैं।

ज्ञानावरणीय कर्म जिसका कार्य ही प्रकाश को बाधित करना है। अपूर्व सम्यग् ज्ञान के प्रकाश तथा आत्मा के मध्य पटावरण रूप में ज्ञानावरणीय स्थित रहता है। जिससे आत्मा का साक्षात्कार सम्यग् ज्ञान से हो ही न सके। ज्ञानावरणीय के निबिड़ तिमिराछन्न मार्ग में आत्मा पथभ्रष्ट होकर अपना गन्तव्य प्राप्त ही न कर सके यही ज्ञानावरणीय कर्म का कार्य रहता है। आत्मिक ज्ञान के शक्ति पुञ्ज को ढंक कर रखना जिससे प्राणी स्वयं का भी दर्शन न कर सके, शास्त्रीय भाषा में इस कर्म को 'पट' की संज्ञा से व्यवहित किया गया है। कितनी तेज दृष्टि क्यों न हो ? किंतु एक पटावरण उस पर आच्छादित हो जाने पर निस्तेज हो जाती है कुछ भी स्पष्ट देखना असंभव हो जाता है वैसे ही ज्ञानावरण के कारण स्पष्ट रूप से भाव के दर्शन, नया स्पर्शन संभव नहीं है। इसी हेतु अलौकिक केवलज्ञान गुण का घाती ज्ञानावरणीय कर्म घाती कर्म की पंक्ति में गिना गया है।

---

संसार में जन्म लेकर जिस मानव में दया, परोपकार, दान, शील, तप, संयम की भावना नहीं, वह मानव पृथ्वी पर भार स्वरूप ही है।

# एक भूल, फूल रूप में

**मुनि जयानन्द विजय 'विद्याशिशु'**

आपन्नदी सिंधुर्लोभः=आपत्ति रूप नदियों को एक स्थान पर इकट्ठा करने के लिए समुद्र के समान है "लोभ"

वर्धमान नामक सुन्दर नगर के पास वेगवती नामक नदी बहती थी। गर्मियों में अधिकतर नदियों का पानी सूख जाता है और गहरा कीचड़ हो जाता है। वैसे ही इस नदी में पानी सूख गया था और कीचड़ हो गया था।

धनदेव नामक व्यापारी ४०० बैलगाड़ियाँ लेकर इस मार्ग से अपने गाँव आ रहा था, गाड़ियाँ कीचड़ में फंस गई उसके पास एक सफेद बैल हस्ती जैसी शक्ति वाला था, उसने उन ४०० गाड़ियों को अकेले ने बाहर निकाल दिया, लेकिन स्वयं थक गया। चलने में असमर्थ हो गया। श्रम की अधिकता ने अपना प्रभाव जमा लिया बैल पर। धनदेव ने निकटवर्ती वर्धमान गाँव के लोगों को बुलाकर बैल की वैयावृत्य करने के लिए कहा और विपुल धन राशि दी। इस बैल के दवा आदि के लिए किसी भी प्रकार की कमी न आने दें, ऐसा कहकर धनदेव अपने नगर की ओर चला गया।

लोभ रूपी राक्षस ने उस नगर निवासियों पर अधिकार जमा लिया। पाप और दुःख का मूल कारण लोभ है इसको वे भूल गये। उन्होंने ध्यान नहीं दिया कि कहीं हमारी एक भूल हजारों लोगों को शूल रूप में उत्पन्न न हो जाय!

लोभ के वशीभूत बनकर गाँव वालों ने उस बैल की ओर कोई ध्यान नहीं दिया और सारी धनराशि आपस में बांट ली। बैल अकाम निर्जरा से मरकर यक्ष रूप में देव योनि में उत्पन्न हुआ।

अपने मिले हुए भव प्रत्ययी ज्ञान के द्वारा उसने देखा पूर्व-भव अपना। सारी घटना काँच में मुँह देखने के समान दिखाई दी, वर्धमान नगर निवासियों के कृत्य को जानकर उसके हृदय में क्रोध-रूप दावाग्नि प्रगट हो गई। क्रोध सन्ताप को फैलाने वाला, नम्रता को दूर करने वाला, मित्र भाव को मिटाने वाला, दुःखों को उत्पन्न करने वाला, यश को मिटाने वाला, दुष्ट बुद्धि को बढ़ाने वाला, पुण्योदय को रोकने वाला, दुर्गति का देने वाला ऐसा यह क्रोध यक्ष के मनोमंदिर में प्रवेश कर गया और उस यक्ष ने वर्धमान नगर निवासियों के शरीर में रोग के कीटाणुओं को प्रवेश करा दिया। बीमारियाँ फैल गई, चारों तरफ लोग मृत्यु की शरण में जाने लगे। दुःख के समय लोग देवी देवताओं की मानता, पूजा करने में लग जाते हैं। लोगों ने बलि, बाकुले आदि देकर आकाश

की तरफ नजरें लगाकर कहने लगे हमसे कोई अपराध हुआ हो तो क्षमा करें, और प्रगट होकर जो कुछ हमसे करवाना चाहते हों, वह हमें कहें, हम करने के लिए तैयार हैं।

"अपराध करते समय विचार कर लिया जाय तो उसका दुःख भुगतना न पड़े" यह विचार न आने के कारण मानवों को अथक दुःख भुगतना पड़ता है अपनी भूलों के कारण।

भयभीत लोग बार-बार देवता की आराधना करने लगे तब उस यक्ष ने प्रगट होकर सारी घटना सुनाई और कहा तुमने लोभ के वशीभूत होकर बैल की जो हत्या की और वह बैल मरकर मैं यक्ष बना हूं और मैंने ही यह बीमारियाँ फैलाई हैं।

अब अगर तुम लोग मिलकर इन हड्डियों पर मानव हाड पिंजरों के ढेर पर एक मन्दिर बनाकर, उसमें मेरी मूर्ति बिठाओ और उसकी हर नर-नारी रोज पूजा करे ऐसा नियम बना लो तो यह रोग मिटा दूंगा। अकाल मृत्यु के भय से बचने हेतु लोगों ने यक्ष की बात स्वीकार कर ली और यक्ष के मंदिर का निर्माण हो गया पूजा होने लगी, नगर निवासियों का रोग चला गया अब वह नगर अस्थिक ग्राम के नाम से पुकारा जाने लगा।

**यक्ष का नाम था शूलपाणी यक्ष।**

क्षमा के भंडार, धीर, गंभीर चाल से विहार करते हुए श्री वीर प्रभु अस्थिक ग्राम आए। ध्यान के योग्य यक्ष का मन्दिर जानकर गाँव वालों से यक्ष के मंदिर में ठहरने की अनुमति मांगी। गाँव वालों ने अर्ज की कि प्रभो यक्ष रौद्र स्वभावी है आपको कष्ट देगा आप कहीं दूसरे स्थान पर ध्यान कीजिए।

भयंकरता और दुष्टता से लोहा लेने वाले वीर प्रभु ने कहा उसकी चिंता आप न करें आप अनुमति दें तो मैं यहीं पर ध्यान करना चाहता हूँ। गाँव वालों ने सोचा हो सकता है इस यक्ष का और हमारा उद्धार इन महानुभाव, महापुरुष के द्वारा हो जाय और सभी लोगों ने मिलकर सहज ही अनुमति दे दी।

**ध्यान मग्न बन गए वीर प्रभु**

घनघोर रात, यक्ष का आना, दावानल क्रोध का उमड़ पड़ना, निर्भयतापूर्वक खड़े महावीर को देखकर। मेरे सामने यह नर मिट्टी का पुतला अपने मद में खड़ा है। शायद यह मुझे पहचानता नहीं, स्वयं की पहचान देने हेतु एक अट्टहास किया यक्ष ने। कुछ नहीं हुआ वीर प्रभु को।

प्रभु की शांतता एक तरफ, दूसरी तरफ आग की ज्वाला। शांतता और ज्वाला का भीषण संग्राम हुआ उस रात यक्ष के मन्दिर में। आग की ज्वाला रूप यक्ष नाना

प्रकार के रूप बनाकर महावीर को पीड़ा पहुँचाने लगा। कभी गेन्द की तरह प्रभु को उछालता, कभी बिच्छुओं के रूप में डंक मारता, शिकारी कुत्तों के रूप में काटने लगता, कभी चींटियों के रूप में प्रभु के शरीर को छलनी जैसा बना देता, पिशाचों का रूप धारण कर रौद्र नृत्य करने लगता कभी सर्पों को बनाकर डंक मरवाता, क्या कभी कंपायमान हुआ है पर्वत ? चलायमान हुआ है समुद्र ? गर्म हुआ है चन्द्र ? नहीं ! तो फिर पर्वत से भी अधिक धैर्यता के धारण करने वाले, समुद्र से भी अधिक गंभीरता के धारक, चंद्र से भी अधिक शीतलता के धारक, प्रभु वीर यक्ष के इन कष्टों से क्या घबराए ! थक गया यक्ष।

दुष्टता और क्रूरता के सामने जीत हुई साधुता की। शान्तता में पलट गई यक्ष पाणी की दुष्टता और क्रूरता। पानी से लड़ने पर आग और पत्थर पर डंक मारने पर जैसे साँप शांत हो जाता है वैसे ही यक्ष शांत बनकर विचार मग्न हो गया।

बिना सामना किए ही ये कोई महापुरुष मुझ से लड़े और मुझे हरा दिया अब तो मैं इनके चरणों में झुक जाऊँ, भक्त बनकर इन पर विजय पाऊँ, बालक बनकर जैसे पिता पर विजय पाई जाती है, वैसे ही मैं भक्त बनकर इनके हृदय मंदिर में बस जाऊँ। क्षमायाचना करते हुए अपने अपराधों की क्षमा माँगने लगा, प्रभु वीर से।

जिन्हें समदृष्टि कहा जाता हो, वे कभी किसी के प्रति विपर्यासता दृष्टि में ला सकते हैं ? नहीं, नहीं, वे तो सदा अपराधी और निरपराधी पर एक भाव रखने वाले हैं।

अब शूलपाणी ने प्रभु के समक्ष कुकृत्यों की क्षमायाचना कर, आगे के लिए कुकृत्यों का जीवन भर के लिए त्याग कर, सुमधुर ध्वनि से गीत गाते हुए, नृत्य करने लगा। वातावरण को संगीतमय बना दिया।

गाँव वालों ने जहाँ रात भर भयंकर अट्टहास सुना था, भयंकर आवाजें सुनी थीं, वहाँ मधुर ध्वनि को सुनकर चिंतामग्न बन गए, विचार करने लगे कि कहीं महा-मानव का अनिष्ट तो नहीं किया ? ऐसे विचाराग्रस्त लोग सुबह होते ही यक्ष के मंदिर में आए और जो दृश्य देखा, आनन्दविभोर हो गए।

यक्ष प्रभु के आगे नाचता था, गाता था, प्रसन्न मुद्रा में। यक्ष ने लोगों को अपने कुकृत्यों के त्याग की प्रतिज्ञा सुना दी।

प्रभु श्री वीर ने उसी रात दो घड़ी की निद्रा में दस स्वप्न देखे थे।

वीर प्रभु विहार कर अन्यत्र चले गए।

एक भूल हजारों के शूल रूप में उत्पन्न होकर, एक महापुरुष के धैर्यतापूर्वक कष्ट सहने के कारण, एक फूल रूप में बदल गई। □

# श्री धनचंद्र सूरि कृत : 'धन अनुभव तूठा' : एक विवेचन

—शा इन्द्रमल भगवानजी बामरा

उपकारी संत महात्माओं की उपदेश वर्षा, जन-मानस को सदाचार से सदैव आप्लावित करती, निरंतर प्रवाहमान है। युग-क्षेत्रों का स्पर्श-सिंचन करती यह धारा अपने में अनेकों विचार प्रवाहिकाओं का भाव एवं भाषा वैविध्य तथा सांस्कृतिक विभिन्नताओं का संग्रहण लिए काल उदधि की ओर अनिरुद्ध गतिशील है।

प्रबुद्ध जन जीते वर्त्तमान में हैं लेकिन भविष्य के प्रति उदासीन न रहकर सदैव जागरूक रहना उनका स्वभाव होता है।

'पेय नीर नवि ढोरिए उनयो देखि पयोद।' उमड़ते, घुमड़ते बादलों की छाई घटाओं को देखकर वर्षा के नव-नीर को भर लेने की तितिक्षा में पनिहारे पर धरे पेय-जल के घड़ों को उलट कर खाली कर डालना बुद्धिमानी नहीं। इसी विचार की परिणति में हमारी परम्परागत शास्त्र-संपदा और समय-समय पर अवतीर्ण महापुरुषों के सदुपदेशों के संकलन ग्रन्थ आज भी विपुल उपलब्ध हैं।

परम सदुपदेशक व अस्खलित आचार परिपालन के प्रखर हिमायती श्रीमद् राजेन्द्र सूरीश्वरजी से उपसंपद प्राप्त आचार्य श्री धनचन्द्र सूरिजी महाराज अपने समय के सुप्रसिद्ध वाग्मी, कवि और आचारनिष्ठ उपदेशक हुए। उनकी लिखी पद्यात्मक अनेकों कृतियाँ औपदेशिक व भावपूर्ण हैं। इनकी रचनाएँ सुगेय एवं विभिन्न राग-रागिनियों में लिखी गई हैं। जिन पर अध्ययनात्मक एक विस्तृत निबन्ध अपेक्षणीय है। ताकि जन सामान्य उनके सही मूल्यांकन से अवगत हो।

रचना के मूल भावों का वास्तविक निरूपण तो स्वयं लेखक द्वारा किया जाना ही उपयुक्त होता है। फिर भी उपदेशात्मक ऐसी रचनाओं के भावानुवाद यहाँ प्रस्तुत करते रहने की योजना है। आशा है सुज्ञ पाठकों को यह रुचेगा।

श्री धनचन्द्र सूरिजी का एक अनुभव-पद यहाँ उट्टंकित कर उस पर संक्षिप्त अर्थ-विवेचन करने का उपक्रम किया गया है। यदि कोई त्रुटि इसमें ज्ञात हो तो, कृपया अवगत करने का अनुग्रह करेंगे।

## धन अनुभव तूठा !

जोगी हुआ तो क्या हुआ, जग जाल न छूटा ।
ऊषर खड़ नवि नीपजे, बहु मेहुला वूठा ।।
चंचल चित्त न चोंटिया, तन जाण्या न झूठा ।
स्तुति सुण विकसित भया, निंदा से अति रूठा ।।
काया कारमी कूँपली, धन पामीने तूठा ।
कुटुंब के पिंजर ऊपरे, मन हुआ न अपूठा ।।
मेरा-मेरा मान के, मरिया अण खूटा ।
मूंछ मरोड़ी मान में, खरा खैर का खूँटा ।।
वीर बंका व धायने, संवर-साज सुं छूटा ।
सूरि राजेन्द्रना संग थी, धन अनुभव तूठा ।।

जागतिक प्रपंचों से किनारा पाने हेतु दीक्षित या सन्यस्त होकर, केवल वेश परिवर्तन कर लेना ही पर्याप्त नहीं । सांसारिक सम्बन्धों से त्याग-वैराग्य वासित हों, तभी इष्ट सिद्धि होने की शक्यता है । अन्यथा केवल योग धारण कर, योगी बनने की प्रक्रिया निरर्थक हो जाती है । आचार्य देव इस पद के आरंभ में ही अपनी अनुभव वाणी में इसे संयुक्ति बतलाते हैं । 'जोगी हुआ तो क्या हुआ....' जब तक जागतिक जंजालों से छुटकारा नहीं हो पाया है और दिन रात मन की गुलामी में केवल इन्द्रियों का पोषण ही किया जा रहा है तो वेश परिवर्तन कर जोगी का जामा पहन लेने मात्र से क्या हुआ । उसका कुछ भी औचित्य नहीं । जैसे मेघ-मालाएँ जब प्रचुर जल बरसा रही होती हैं, तब खेत तो फसलों से सुफलित होते ही हैं, साथ ही उज्जड़ भूमि खंड भी अंकुरित होकर घास-पात से लहलहा उठते हैं । परन्तु ऐसे सुकाल में भी अतिक्षार वाली और कंकरीली ऊसर भूमि पर किसी भी प्रकार की वनस्पति उत्पन्न नहीं होकर वह रोमविहीन गंजे सिर की भाँति कोरी की कोरी ही रह जाती है । उन दिनों वास्तविक त्याग रहित, दिखावटी, द्रव्य भोग की जीवन स्थिति का निरुपण केवल इन दो पंक्तियों में बड़ा सटीक व्यक्त हुआ है ।

योग साधन और दीक्षित जीवन में आड़े आने वाले सहज अवरोधों का आगे की पंक्तियों में क्रमश: निदर्शन भी यथास्थान है 'मनो निग्रह' त्याग मार्ग की पहली शर्त है । उसके बिना चंचल चित्त अपने निज से चिपका कर स्थिर नहीं किया जा सकता, अत: विनश्वर और घिनौने नाशवान पदार्थों से निर्मित देह के सौन्दर्य-भ्रम में ही विमुग्ध होकर आत्मा अपनी जीवन संतुष्टी मानता रहा । अस्थिर मन अपनी प्रशंसा सुनते ही खुश होकर फूल तो उठता है, लेकिन जरा सी निन्दा या आलोचना सुनते ही अत्यंत रूठ कर, विफल हो उसे तिलमिला उठने में भी विलंब नहीं । चंचल

चित्त की यही विचित्र विडंबना है ।

'काया कारमी ...' विनश्वर यौवन काल की दैहिक चटक-मटक से काया को भले कितना ही सहला-सजा कर प्रसन्न हुआ जाय, ढलती उम्र में यौवन-सौन्दर्य जर्जरित होकर अंततः विनष्ट हो ही जाता है । इस सत्य को मन समझता कहाँ है ? धन-प्राप्ति में संतुष्ट हुआ मन यह भी भूल जाता है कि प्राप्त धन की क्या सदैव यही स्थिति रहेगी ? निज के आत्म स्वातंत्र्य को विस्मृत कर कुटुंबी-जन के घेरे में बसा जीव पिंजरे के पक्षी की भाँति मिथ्या सुख में भूला जी रहा है । आत्म-तत्त्व के उन्मुक्त आकाश में स्वतंत्र उड़ान भरने की उसकी चाह ही नहीं रही ।

'मेरा मेरा....' यह भी मेरा, वह भी मेरा । मन के अथाह विस्तार को कैसे नापा जाय । मन के मान-मान्यता की लीला तो देखिए । जो वस्तुतः अपना नहीं है, जिसका आत्मा से कोई वास्ता ही नहीं । अगणित लोग उस मन की मोहिनी में मर मिटे । अरे ! कितने ही तो स्व-मान के झूठे दंभ में मूँछें मरोड़-ताव देकर आत्म-रक्षा की तनिक परवाह किए बिना ही खैर के खूँटे की भाँति अणनम-अकड़े रहते हुए नाम शेष हो गए ।

**'वीर बंका....'**

वीर बाँकुरे श्री महावीर प्रभु की वन्दना कर-जिन कुल में जन्म पाकर भी संवर भाव के आयुधों से छूटा रहा—अछूता रहा । किंतु मुझ धन विजय (जो बाद में धनचंद्र सूरि हुए) के अहोभाग्य हैं कि श्री राजेन्द्र सूरीश्वर जैसे परम तारक गुरुवर की संगति मुझे मिली । जिसे--प्राप्त कर मैं धन्य हो गया । प्रकारांतर से सूरीश्वर के महाराजा श्री जिनेश्वर के गुणों की संगति-स्पर्श से मैं अनुभव ज्ञानमय तुष्ट हो उठा ! तृप्त हो गया !! मेरी सुप्त आत्मा-चेतना जागृत हो उठी !!! ●

जीवन क्षणभंगुर है । बिजली की चंचल गति के समान चंचल है । क्षण-भर के लिए अपनी चमक दिखाकर बिजली जिस प्रकार लुप्त हो जाती है, उसी प्रकार जीवन भी कुछ वर्षों तक अपनी झलक दिखाकर समाप्त हो जाता है; इसलिए जब तक जीवन विद्यमान है, अच्छे कार्यों द्वारा उसका सदुपयोग कर लेना चाहिये ।

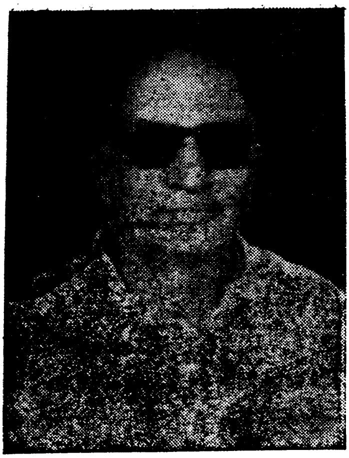

# जैन धर्म में भक्ति-योग

**डॉ० प्रेमसिंह राठौड़**

आत्मशुद्धि के लिए की जाने वाली भक्ति ही वास्तव में भक्ति-योग है। जिस अनुराग में भावों की शुद्धि नहीं होती, उसे भक्ति नहीं कहा जा सकता है। जैन भक्ति का अर्थ ऐहिक स्वार्थ नहीं है, अपितु आत्मशुद्धि है। आत्मा जब परमात्मा बनना चाहती है तो उसका प्रयत्न भक्ति से प्रारंभ होता है। भक्ति शुभोपयोग का कारण है और शुभोपयोग से पुण्य का बंध होता है। यदि भक्ति में फलासक्ति न हो और वह निष्काम हो तो अंत में वह शुद्धोपयोग की ओर आकृष्ट करने का निमित्त बनती है। शुद्धोपयोग मुक्ति का साक्षात् कारण है।

जैन धर्म व्यक्ति का नहीं वरन् गुणों का उपासक है। गुणों की प्राप्ति के लिए भक्त गुणवान उपास्य को अपना आदर्श मान कर उन गुणों को प्राप्त करना चाहता है। यही भक्ति का वास्तविक ध्येय है। कहा भी है—

मोक्ष मार्गस्य जेतारं, भेत्तारं कर्म भूभृताम्,
ज्ञातारं विश्व तत्वानां वंदे तद्गुण लब्धये।

मैं मोक्ष मार्ग के नेता, कर्म रूपी पर्वतों को भेदने वाले और विश्व तत्वों के ज्ञाता को उनके गुणों की प्राप्ति के लिए वंदन करता हूं।

श्री हेमचन्द्राचार्य ने भी ऐसे ही भाव व्यक्त किये हैं—

भवबीजांकुरजनना, रागाद्या क्षय मुपागता यस्य,
ब्रह्मा वा विष्णुर्वा, हरो, जिनो वा नमस्तस्मै।

इस श्लोक में भी उस महापुरुष को नमस्कार किया गया है, जिसने राग, द्वेष नष्ट करके

पुनर्जन्म की संभावना नष्ट कर दी हो, चाहे वह ब्रह्मा हो, विष्णु हो, हरि हो या जिन हो।

सुप्रसिद्ध तार्किक आचार्य अकलंक देव भी गुणोपासना के संबन्ध में कहते हैं– "जिन्होंने जानने योग्य सब कुछ जान लिया है, जो जन्मरूपी समुद्र की तरंगों के पार पहुंच गया है, जिनके वचन दोषरहित, अनुपम, पूर्वापर विरोध-रहित हैं, जिसने सारे दोषों का विध्वंस कर दिया है और इसलिए जो संपूर्ण गुणों का भंडार बन गया है तथा इसी हेतु जो संन्तों द्वारा वंदनीय है, मैं उनकी वंदना करता हूं चाहे वह कोई भी हो, बुद्ध हो, वर्धमान हो अथवा महादेव हो।"

यह सब उदाहरण हमें बतलाते हैं कि भक्ति गुण की होती है, व्यक्ति की नहीं। यदि परमात्मा की भक्ति करने से कोई परमात्मा नहीं बन सकता है तो फिर भक्ति करने का प्रयोजन की क्या है। इस संबन्ध में भक्ति के महान् आचार्य मानतुंग ने ठीक ही कहा है–

नात्यद् भुवनभूषण भूतनाथ भुतैर्गुणैर्भुविभवन्तमभिष्टुवन्तः।
तुल्या भवंति भवतो ननु तेन किंवा भूत्याश्रित य इह नात्म समं करोति॥

हे जगत्‌भूषण, हे जगत के जीवों के नाथ, आपके यथार्थ गुणों द्वारा आपका स्तवन करते हुए, भक्त, यदि आपके समान हो जाय तो हमें कोई आश्चर्य नहीं है। ऐसा तो होना ही चाहिए, क्योंकि स्वामी का यह कर्त्तव्य है कि वह अपने आश्रित भक्त को अपने समान बना ले अन्यथा उस मालिक से क्या लाभ जो अपने आश्रित को अपने समान नहीं बना लेता है।

परन्तु यहां यह प्रश्न उपस्थित होता है कि जब परमात्मा राग-द्वेष से विहीन है, तब उसकी भक्ति से लाभ ही क्या है, क्योंकि राग न होने के कारण वह अपने किसी भक्त पर अनुग्रह नहीं कर सकता और द्वेष न होने से किसी दुष्ट का निग्रह करने के लिए भी प्रेरित नहीं होगा। प्रख्यात तार्किक आचार्य समंतभद्र ने इस प्रश्न का उत्तर देते हुए "स्वयंभू स्त्रोत" में तीर्थंकर भगवान वासुपूज्य जी का स्तवन करते हुए कहा है—

न पूजयार्थस्त्वयी वीतरागे न निन्दया नाथ विवान्तवैरे,
तथापि ते पुण्यगुणस्मृतिर्नः पुनातु चेतो दुरितांजनेभ्यः।

हे नाथ! आप तो वीतराग हैं, आपको अपनी पूजा से कोई प्रयोजन नहीं है। आप न तो अपनी पूजा करने वालों से प्रसन्न होते हैं और न निन्दा करने वालों से अप्रसन्न, क्योंकि आपने तो वैर का पूरी तरह वमन कर दिया है, तो भी यह निश्चित है कि आपके पवित्र गुणों का स्मरण हमारे चित्त को पापी कलंकों से हटा कर पवित्र बना देता

है।" इसका आशय यह है कि परमात्मा स्वयं यद्यपि कुछ नहीं करता फिर भी उसके निमित्त से आत्मा में जो शुभोपयोग उत्पन्न हो जाता है उसी से उसके पाप का क्षय और पुण्य की प्राप्ति होती है। छाया वाले वृक्ष के नीचे बैठ कर, फिर उस वृक्ष से छाया की याचना करना तो बिल्कुल ही व्यर्थ है, क्योंकि वृक्ष के नीचे बैठने वाले को तो वह स्वतः ही प्राप्त हो जाती है।

भगवान तो निर्मल दर्पण की तरह सदा स्वच्छ है। दर्पण में कोई अपना मुंह सीधा करके देखता है तो उसे अपना मुंह सीधा दिखता है और जो अपना मुंह टेढ़ा करके देखता है, उसे टेढ़ा दिखता है, किन्तु दर्पण न किसी का मुंह सीधा करता है और न टेढ़ा ही। इसी प्रकार राग-द्वेष रहित परमात्मा न स्वयं किसी को सुख देते हैं और न दुःख। वह तो प्रकृतिस्थ हैं। मनुष्य अपनी मनःप्रकृति के अनुसार दूसरों से प्रभावित होता है। किसी स्त्री का मनोहर चित्र किसी भी रागी पुरुष के आकर्षण का कारण बन जाता है, किन्तु यह कार्य वह चित्र नहीं करता है, वह तो निमित्त मात्र है। चित्र में न किसी के प्रति राग होता है और न किसी के प्रति द्वेष। फिर भी यह आकर्षण चित्र का माना जाता है। यही बात परमात्मा की भक्ति के विषय में भी है।

भक्ति को तर्क पसंद नहीं है वह तो श्रद्धा प्रसूत है। पर इसका यह अर्थ कदापि नहीं है कि भक्ति में विवेक नहीं है। अगर भक्ति में विवेक का पुट नहीं है। तो वह भक्ति नहीं है। ज्ञानी और अज्ञानी की भक्ति में जो महान अंतर जैनाचार्यों ने बतलाया है उसका कारण विवेक का सद्भाव और असद्भाव ही तो है। विवेकयुक्त भक्ति ही मानव को अमरत्व की ओर ले जाती है।

जैनाचार्यों ने भक्ति को एक निष्काम कर्म माना है। यदि उसमें फलासक्ति उत्पन्न हो जाय तो भक्ति बिल्कुल व्यर्थ है। जैन शास्त्रों में निदान, फलाकांक्षा को धार्मिक जीवन में एक प्रकार का शल्य, कांटा माना है।

जैन शास्त्रों का लक्ष्य आत्मशोधन के साथ-साथ लोकोपकार की भावना भी है। उनका दृष्टिकोण संकुचित नहीं, अपितु उदार, विशाल एवं व्यापक है। इसमें "वसुधैव कुटुम्बकम्" की उदात्त तथा प्रांजाल भावना, इससे मानव को जो प्रेरणा मिलती है उससे मानवता निखर जाती है। जैन भक्ति की एक विशेषता यह भी है कि इसमें किसी प्रकार के आडंबर को स्थान नहीं है क्योंकि उससे कभी आत्मा का यथार्थ दर्शन नहीं होता है। उपास्य का जो वास्तविक स्वरूप है उसी की उपासना पर जैन भक्ति ने बल दिया है। आध्यात्मिक गुणों को ही भक्ति का आधार माना गया है, क्योंकि उन्हीं की अभिव्यक्ति जीवन में अपेक्षित है।

जैन भक्ति एवं पूजा के प्रकरणों में भक्ति के फलस्वरूप ऐसी मांगें जरूर

उपलब्ध होती हैं जो वैयक्तिक नहीं, अपितु सार्वजनिक है, फिर भले ही वे लौकिक ही क्यों न हों। भगवान की उपासना के बाद उपासना-गृहों में ऐसी ही भावना व्यक्त की जाती है। जैसे —

संपूजकानां प्रतिपालकानाम्, यतीन्द्रसामान्यतपोधनानाम्,
देशस्य राष्ट्रस्य पुरस्य राज्ञ, करोतु शान्ति भगवान् जिनेन्द्र.।

जो भगवान के भक्त हैं, जो दीन-हीनों के सहायक हैं, जो यतियों में श्रेष्ठ हैं, जो तपोधन हैं, उन सबको तथा देश, राष्ट्र, नगर और राजा को भगवान जिनेन्द्र शान्ति प्रदान करें। ●

---

जिस प्रकार उदित होता सूर्य धीरे-धीरे प्रकाश फैलाते हुए
अन्धकार को दूर करता है उसी प्रकार नवकार
मन्त्र का सच्चे मन से ध्यान जीवात्मा के
अज्ञान रूपी अन्धकार को
दूर हटाता है।


**यदि आप चाहते हैं कि :**

**समाज में व्याप्त कुरीतियों, कुप्रथाओं में सुधार हो,**
**धार्मिक शिक्षा का प्रसार हो तथा सामाजिक चेतना और जागृति का विस्तार हो**

**तो आज ही**
**अपने नगर में परिषद की शाखा स्थापित कीजिये,**

सम्पर्क सूत्र :
**अखिल भारतीय श्री राजेन्द्र जैन नवयुवक परिषद**
**केन्द्र। मोहनखेड़ा तीर्थ, राजगढ़ म. प्र.**

**सम्पर्क : श्री भंवरलाल छाजेड़**
अध्यक्ष : अ. भा. श्री राजेन्द्र जैन नवयुवक परिषद
नीमच [म. प्र.]

# धर्म : परम्परा नहीं

मुनिश्री लोकेन्द्रविजय जी 'मार्त्तण्ड'

जन्म हमें मिलता है, जीवन निर्मित करना पड़ता है। जन्म मिलना जितना दुर्लभ नहीं, उससे अधिक दुर्लभ जीवन की गहराईयों में उतरना है। क्योंकि जन्म और जरा का एक तेज प्रवाह है। वह प्रति क्षण बदलता जा रहा है। जब तक प्रवाह समाप्त न होगा, तब तक हम केन्द्र पर नहीं पहुँच सकेंगे। इस प्रवाह को समझना पड़ेगा।

यदि हम अपने बचपन का चित्र देखें तो हमें जानने में जरा मुश्किल होगी, क्योंकि जो था, वह सब बदल गया, प्रत्येक समाप्त हो गया। हमारा जीवन लिक्विड है, तरल है। एक तरल पदार्थ की तरह बह जाता है, इस प्रवाह का कभी अन्त नहीं आता। परन्तु एक ऐसी भी व्यवस्था है जिससे वह उपलब्ध हो जाता है। उसके जीवन का प्रवाह रुक जाता है। प्रवाह का अर्थ है संसार। जिस प्रकार चक्र घूमता है। उसी प्रकार हमारी यात्रा का प्रवाह है। जब तक हम इस संसार में हैं, तब तक यह प्रवाह चलता रहेगा। जब यह प्रवाह समाप्त हो जायेगा। तब धर्म पैदा होगा। धर्म संज्ञा है। धर्म स्थिर है। उसका कोई प्रवाह नहीं। जब आत्मा धर्म को उपलब्ध हो जाती है। तब उसके जीवन की धारा में एक आनन्द, एक नया द्वार खुल जाता है, जीवन की जंजीरें ढीली पड़ जाती हैं। उसमें स्थिरता आ जाती है।

लेकिन शर्त है धर्म के स्वभाव के अनुसार उसको यात्रा करना। जब धर्म का जीवन में परिपूर्ण समाविष्ट हो जाता है। तब उसके जीवन में अमृत झरता है। धर्म यानि जो तुम्हारी आत्मा का स्वभाव है, स्वभाव के अनुसार ही जीवन-चर्या बन जाती है, जब आत्मा के स्वभाव के अनुसार ही हमारा कृत्य हो जाता हो। तभी आत्मा धर्म को उपलब्ध करा सकती है।

परन्तु हमने धर्म को एक नया मोड़ दिया, धर्म कोई परम्परा नहीं, जैसा कि हमने धर्म का विभाजन कर दिया कि यह वैष्णव-धर्म है, यह जैन धर्म, यह बौद्ध धर्म यह अन्य धर्म, धर्म कोई सम्प्रदाय या सामाजिक नहीं है और यह ध्यान रखना कि परम्परा का अर्थ हो जाता है कि अतीत का चरण-चिन्ह। जो पूर्व से चला आ रहा है और धर्म है नव-नुतीन। जब व्यक्ति धर्म को उपलब्ध हो जाता है, वह नव-नूतन है। जो व्यक्ति परम्परा को पकड़ लेता है। उसके जीवन का विकास रुक जाता है, अवरुद्ध हो जाता है, कुण्ठित हो जाता है। इसीलिये भगवान महावीर ने एक सूत्र में कहा था। "वत्थु सहावो धम्मों" वस्तु का स्वभाव धर्म है। जैसे जल का स्वभाव ठंडा है। उसे अगर आप गर्म करेंगे तो कुछ समय बाद पुनः ठण्डा हो

जायेगा। अग्नि का स्वभाव गर्म है। जल का स्वभाव निर्मल है। जैसे कि नाले में गंदा पानी बहता है, जैसे-जैसे पानी आगे बढ़ता है, गंदेपन को छोड़ता हुआ, स्वच्छ बन जाता है। आत्मा का स्वभाव भी निर्मल और स्वच्छ है लेकिन संयोगवश ही आत्मा के प्रतिकूल कृत्य हो जाता है। उसी का नाम अधर्म है।

जब तक हमारी आत्मा केन्द्र को प्राप्त न करेगी तब तक वह प्रवाह चलता रहेगा। प्रवाह में उसे कष्ट, दुःख और आपत्तियाँ सहन करनी पड़ेंगी। जन्म, जरा मृत्यु का चक्र चलता ही रहेगा। मृत्यु से जब आत्मा का परिचय हो जाता है। धर्म का पर्यायवाची मृत्यु है। जैसे जीवन प्रवाह है, मृत्यु स्थिर है। मृत्यु के समय मालूम पड़ता है कि जीवन में कुछ प्राप्त किया है या नहीं किया। जब मृत्यु को हम हंसते हुये स्वीकार कर चलते हैं तब मृत्यु भी हमारे लिये एक आनन्द-द्वार बन जाती है। और जो आत्मा रो-रोकर मृत्यु को स्वीकार करती है। उसके लिये मृत्यु भार-भूत होती जाती है।

जब मृत्यु भार-भूत बन जाती है तब जानो कि जीवन यों ही बीत गया, जीवन में कुछ न कर सके, जीवन में कोई भी उपलब्धि न की। मृत्यु को उसी तरह ग्रहण करें जैसे कि वह इनाम पा रहा हो। प्रसन्नता से ग्रहण करे। मृत्यु के आने पर खुशी जाहिर करे। रंज न करे। यही उपलब्धि का चिन्ह है। भगवान् बुद्ध के जीवन की एक छोटी सी घटना है।

गौतमबुद्ध जब बिहार में विचरण कर रहे थे। एक दिन एक गांव में एक लोहार बुद्ध के पास गया और जाकर प्रार्थना करने लगा। भन्ते ! मेरी छोटी सी झोपड़ी में पधार कर मेरा आतिथ्य स्वीकार करो। गौतम बुद्ध ने उसकी भावना देख कर आतिथ्य स्वीकार किया। बिहार में गरीब लोग कुकुरमुत्ते का साग बनाते है। लेकिन कभी-कभी क्या होता है कि कुकुरमुत्ते के साग में विष होता है। गौतम बुद्ध भोजन करने गये। भोजन किया। जब बुद्ध भोजन कर जाने लगे तो उन्हें लगा कि उनके शरीर में विष व्याप्त हो गया है। उन्होंने सोचा यदि मैं मर जाऊँगा तो मेरे सन्यासी और श्रीमंत लोग लोहार को परेशान करेंगे कि तूने गौतम बुद्ध को मार दिया। बुद्ध अपने स्थान पर पहुँचे और भिक्षुकों से कहा "तुम लोहार को जाकर कहो कि बुद्ध ने तुम्हें भोजन के लिये आशीर्वाद दिया है। बुद्ध ने तुम्हारे अन्तिम भोजन को स्वीकार किया है। भिक्षु गये और लोहार को आशीर्वाद दिया कि कल्पों-कल्पों में ऐसा अवसर आता है कि तथागत बुद्ध ने भी तुम्हारा अन्तिम भोजन स्वीकार किया।

मृत्यु के आने के बाद में भी इतनी करुणाकारी और परोपकारी भावना जब जीवन में आ जाती है तब धर्म उद्भव हो जाता है। जब मृत्यु की चिन्ता हमें हो जायेगी, तभी धर्म पैदा हो पायेगा। हमारा मन बड़ा चालाक है। वह मृत्यु को बहुत दूर रखता

है। वह मृत्यु को नजदीक नहीं आने देता। जब तक मृत्यु नजदीक नहीं आयेगी तब तक उसका परिचय न हो पायेगा।

जैसे कि एक दीया हमारे हाथ में है, उसका प्रकाश तीन, चार हाथ दूर तक जायेगा। उस प्रकाश के घेरे में क्या है वह हमें दृष्टिगोचर न हो पायेगा। हमारी मृत्यु हमें सालती नहीं। जब मृत्यु आपको चूमने न लग जाय, मृत्यु सागर से परे होने की भावना आपको पैदा न होगी। तब तक आपकी आत्मा का विकास होने वाला नहीं है। इसलिये इस संसार रूपी समुद्र में या संसार रूपी युद्ध के मैदान में मूक पशुओं की तरह मत बनो। एक वीर की तरह भूमिका निभाते रहो।

जब तक हमारा जीवन एक वीर की तरह न बनेगा, और मूक पशुओं की तरह हमारी यात्रा चली तो हम संसार में भारभूत बन जायेंगे। हमारा जीवन इतना सरल बन जाय की जैसे छोटे बच्चे के समान। जब इतने सरल हो जाते हैं तब धर्म पैदा होता है। एक वीर की भूमिका निभाकर मृत्यु पर विजय प्राप्त करता है। जब हम मृत्युंजय बन जायेंगे, तभी हमारी आत्मा परिपूर्ण हो सकती है। ऐसा नहीं कि जीवन के समाप्ति क्षण नजदीक आ जाय और हम धर्म करने की कोशिश करे। जबकि कानों से सुन नहीं सकते, आंखों से बराबर देख नहीं सकते और पैरों से बराबर चल नहीं सकते। तब सोचो कि कुछ करें तो वह हमारे प्रयास में बालू के कणों से तेल निकालने जैसा है। जब तक हमारी इन्द्रियां सशक्त हैं तभी धर्माचरण कर लेना चाहिये, नहीं तो जैसे जन्म को प्राप्त किया है वैसे ही मृत्यु को प्राप्त हो जाओगे।

जीवन निष्फल हो जायेगा। जैसे कि मूर्ख गाड़ीवान जान-बूझकर उबड़-खाबड़ रास्ते पर गाड़ी चलाता है और जब गाड़ी के पहिये की धुरी टूट जाती है। तब शोक करता है। रोता है, चिन्ता करता है। ठीक उसी प्रकार जीवन के क्षण समाप्त होने को आ जाते हैं तब हमें रोना पड़े, शोक करना पड़े उसके पूर्व ही धर्माचरण कर लेना चाहिये। महावीर का यह सूत्र कितना सुन्दर है। इस सूत्र को हम विस्तार से समझेंगे।

जिस प्रकार गाड़ीवान जान-बूझकर उबड़-खाबड़ रास्ते को अपनाता है, उसी तरह हमारे जीवन का सत्य मार्ग हम छोड़ देते हैं। हम विषय-भोगों में लिप्त रहते है। जीवन के सत्य को पहिचान न पाते हैं। वह तो अज्ञानी है। लेकिन जो जानता हैं, सोचता है और उसके प्रति विचार भी करता हैं। परन्तु अपने जीवन में उतारता नहीं है। जिस तरह ज्ञानी पुरुष व पंडित स्वयं अनुचरण नहीं करता पर दूसरों को कहता है। यही हमारे सत्य मार्ग को अवरुद्ध करता है। वह जान कर भी अनुसरण नहीं करता वह मूर्ख है। स्वयं का आत्मघाती है; जो आत्मा पर भी चोट करता है।

आचरण का तो जोर देते हुये डॉ० पूर्णसिंह ने एक निबन्ध में लिखा था कि "तुम्हारे सन्यासियों के उपदेश तभी जनता पर असर कर पायेंगे कि जब तुम्हारा सन्यासी का आचरण ईश्वर जैसा होगा। मुल्ला व मौलवियों का उपदेश तभी लगेगा जब वह स्वयं भी पैगम्बर समान बने या उसका आचरण पैगम्बर की तरह हो। मूर्ख गाड़ीवान उबड़-खाबड़ रास्तों पर जान कर चलता है गाड़ी की धुरी टूट जाती है। जब हम कुमार्ग की ओर अग्रसर हो जाते हैं। तब जीवन रूपी सम्पत्ति समाप्त हो जाती हैं। तब हम शोक करते हैं।

महावीर के इस सूत्र से हमें शिक्षा लेनी चाहिये कि हमारे जीवन को रूपान्तर कैसे करें। कैसे हमारा मृत्यु से साक्षात्कार हो जाय। जब मृत्यु के रहस्य का उद्-घाटन हो जायेगा। हमें जीवन का मधु प्राप्त करने के लिये, हमारा जीवन सार्थक हो जाये, हमारी अमूल्य निधि का क्षण न हो इसलिये हमें आत्मा के स्वभाव को प्राप्त होना पड़ेगा। धर्म को जानने की ही नहीं वरन् धर्म को, धर्म के स्वभाव को जीवन में उतारना पड़ेगा। तभी हमारी जीवन-रूपी गाड़ी सही रास्ता पकड़ेगी। हमारा पथ सही होगा।

हमने जन्म लिया, अपने जीवन को निर्मित करना ही हमारा उद्देश्य होना चाहिये। जीवन के निर्माण का अर्थ है। धर्म का आचरण करना और धर्माचरण से ही स्वभाव की शुद्धि होती है स्वभाव के शुद्ध होने से आत्मा का साक्षात्कार या आत्मोद्धार होता है। इसलिये हमें महावीर के जीवन से शिक्षा लेनी चाहिये। तभी हम सच्चे एवं समृद्धिशाली समुदाय का सृजन कर सकेंगे। ●

---

## शाकाहार

काक श्वानवत उद भर, क्यों खाते पशु का मांस।  
दु:ख द्वन्द्व से युद्ध रच, करे जनसंख्या का नाश॥  
करे जनसंख्या का नाश, जगत में फैले महामारी।  
विनाश-लीला रचा रहे, मांस वृत्ति के भक्षाचारी॥  
बेनार्ड शाह की अपील को, सुनो राजनीति के मठधारी।  
जीवित पशु पर दया करो, विश्व बने शाकाहारी॥

(अंग्रेजी से हिन्दी अनुवाद)

—**सौभाग्यमल जैन 'वकील'**

# सेवा-धर्म

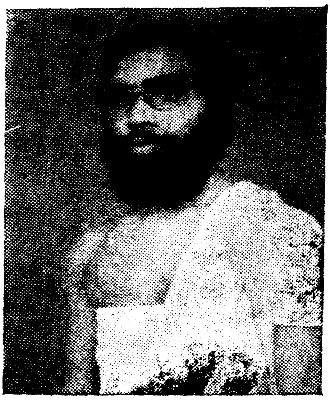

मुनिश्री लेखेन्द्र शेखरविजय जी महाराज

एक बार महाश्रमण भगवान् महावीर से पूछा गया कि भगवन् ! वैयावृत्य-सेवा करने से जीव को क्या लाभ होता है ?

महाश्रमण भगवान् महावीर ने कहा 'हे गौतम ! सेवा करने से जीव तीर्थंकर नाम कर्म का बंध करता है।'

यदि कोई व्यक्ति, दुःखी-पीड़ित व्यक्ति की निष्काम भाव से बिना किसी यश कीर्ति-प्रशंसा के लोभ से सेवा करता है तो वह तीर्थंकर बन सकता है। निष्काम-भाव से की गई सेवा के कारण पुण्योदय होता है और व्यक्ति विकास के पथ पर अग्रसर होता है। अतः स्पष्ट है कि सेवा-धर्म उत्कृष्ट है। इतना उत्कृष्ट कि व्यक्ति को देव ही नहीं देवाधिदेव बना देता है। निष्काम भाव से सेवा करने वाला व्यक्ति तो दुःखी पीड़ित व्यक्ति के प्रति अपने आपको समर्पित कर देता है। इसका एक मात्र कारण यह है कि सेवा निष्काम भाव से सेवा करने वाला व्यक्ति तो दुःखी पीड़ित व्यक्ति में तल्लीन हो जाता है, एक रूप हो जाता है। इससे वह पर का, दूसरे व्यक्ति के दुःख को तो दूर करती ही है। साथ ही वह अपना दुःख भी मिटाता है।

क्योंकि जब तक कोई व्यक्ति अपने वेदनाग्रस्त दुःख से, पीड़ा से, कराह रहा है, तब तक निष्काम भाव से सेवा करने वाला व्यक्ति अपने मन में भी पीड़ा, वेदना दुःख अनुभव करता है। जब तक दूसरे की वेदना का अनुभव आपकी अपनी वेदना का अनुभव नहीं बन पाता है। तब तक आप सेवा धर्म का पालन नहीं कर सकते हैं। सेवा करने वाले व्यक्ति के मन से सबसे पहले "स्व" और "पर" का भेद मिटाना चाहिये। जब तक स्व और पर की भेद भरी दीवार है तब तक सेवा मार्ग का अवलम्बन ग्रहण नहीं किया जा सकता है। जिसके मन में भी निष्काम-सेवा की भावना है, उसे किसी प्रशंसा, किसी, यश कीर्ति या धन-वैभव को प्राप्त करने की इच्छा जागृत

होगी ही नहीं। सेवा की साधना करने वाले साधक के मन में भौतिक सुखों को तथा भौतिक पदार्थों को प्राप्त करने की कोई अभिलाषा एवं तृष्णा ही नहीं रहती। उसके मन में तो सदा यह भावना भरी रहती है कि संतप्त व्यक्ति का हाय शान्त हो जाय, दुःखी व्यक्ति का दुःख दूर हो। उसकी तो सदैव यही कामना रहती है कि—

न त्वहं कामये राज्यं, न स्वर्ग, न पुनर्भवम्।
कामये दुःख तप्तानां प्राणीनामार्ति नाशनम्॥

विश्व के संतप्त व्यक्तियों की पीड़ा एवं ताप से मुक्त करने की सुन्दर एवं शुभ भावना रखने वाला तथा बिना किसी कामना के एवं बिना किसी स्वार्थ के दूसरे के दुःख दूर करने वाला व्यक्ति तो बिना कुछ चाहे भी सब कुछ प्राप्त कर लेता है। जो कुछ नहीं चाहता उसे ही तो सब कुछ मिलता है। इच्छा-कामना-चाह-वेदना का मूल मानी जाती है। इच्छा-कामना ऐसी आग है जो मन में सदैव जलती रहती है। और जलाती रहती है। यह एक ऐसी आग है, जिसमें सब कुछ जल जाता है। जब तक कामना की, तृष्णा की आग जलती रहती है तब तक यह संभव ही नहीं कि दुःख या पीड़ा न मिले। इसलिये इच्छा से, कामना से बचें। यदि कामना समाप्त हो, इच्छा मिट जाय तो चिंता ही किस बात की।

कहा भी हैं—'चाह गई, चिन्ता मिटी, मनुआ बेपरवाह'

यदि दुःख से, वेदना से छुटकारा पाना है यदि सचमुच ही आप इस व्याधि से मुक्त होना चाहते हैं तो सबसे पहले कामना पर विजय प्राप्त करनी पड़ेगी। जो भी काम आप करें निष्काम-भाव से करें। सेवा से स्वार्थ या कोई मोह जुड़ा तो समझ लीजिये कि आपका सेवा का महत्व एवं मूल्य कम हो गया।

सेवा क्या है, उसका महत्व कितना है? इस सम्बन्ध में एक योगी का मत दृष्टव्य है—ईश्वर प्राप्ति के लिये इतने मार्ग हैं, जितने के दुनिया में परमाणु हैं। किंतु सबसे अच्छा और सबसे छोटा (Short & Cut) रास्ता है "सेवा" इतना तो स्पष्ट है इससे कि सेवा-धर्म श्रेष्ठ है, महान् सेवा-धर्म एक ऐसा धर्म है जो व्यक्ति को ईश्वर के पद पर प्रतिष्ठित करता है। महान् बना देता है। यह महानता या विराटता कहीं बाहर से लायी गई नहीं है, आई नहीं या आती नहीं। यह तो व्यक्ति के भीतर ही प्रस्फुटित होती है? पाश्चात्य के एक विचारक ने लिखा है—'वास्तव में महान् व्यक्ति तीन चिन्हों द्वारा माना जाता है, योजना में उदारता, उसे पूरा करने में मनुष्यता और सफलता में संयम का समाविष्ट हो। जिस व्यक्ति के हृदय में उदारता एवं विशालता है वही व्यक्ति दूसरे के सुख दुःख को समझ सकता है, उसकी मानवता उसे कार्य करने की प्रेरणा देती है।

# एक और २५०० वाँ परिनिर्वाण-महोत्सव

—श्री अजित मुनि

प्रस्तुत लेख में श्री अजित मुनि जी ने आने वाले वर्षों में गणधर श्री इन्द्रभूति गौतम के २५०० वें परिनिर्वाण वर्ष को मनाने की व्यापक रूपरेखा प्रस्तुत की है। —सम्पादक

अभी-अभी हमने गत सात वर्ष पूर्व समग्र जैन समाज के साथ राष्ट्रीय स्तर पर भगवान् महावीर का २५०० वां परिनिर्वाण महोत्सव अनेकानेक गतिविधियों की ऐतिहासिक सम्पन्नता के साथ मनाया था।

**स्वयंसिद्ध प्रमाण पत्र —**

हम भगवान् महावीर के शासन-साधक हैं। इस जिन शासन की हर मूल्य पर शोभा एवं प्रभावना वृद्धि के लिए चतुर्विध संघ प्रतिफल कर्त्तव्य-निष्ठा से आत्म-भावेन आबद्द है। उसकी सांसों का संकल्प ही क्षण-क्षण समर्पित है। यदि संघ सदस्य इससे उपरत होता है, तो यह जिनशासन एवं संघ के प्रति उसकी गद्दारी का प्रतीक है। हम भगवान महावीर के शासन के प्रति कितने वफादार हैं ? यह निर्णय तो हम स्वतः ही, सही अर्थों में कर सकते हैं। इसके लिये किसी से प्रमाण पत्र मांगने की आवश्यकता नहीं है और न ही इस प्रकार का आपको कोई प्रमाण पत्र देने की अर्हता रखता है। स्वयं की सत्य कर्त्तव्यनिष्ठा ही स्वयं-सिद्ध प्रमाण पत्र है।

**ऋण-नत —**

भगवान् महावीर के १४००० मुनि शिष्यों में सर्वप्रथम "गणधर गौतम" की सर्वोच्चता आदरणीय है। गणधर गौतम की सहज विनम्रता, सरलता एवं जिज्ञासा इतनी गरिमापूर्ण है कि उसकी समकक्षता को कोई नहीं पा सका हम सभी सर्वात्म-भावेन श्रद्धा निष्ठ नत हैं, आगामी पीढ़ी नत रहेगी एवं पूर्व में भी ऋण नत रहे हैं।

**उपकारी देन —**

आज हमारे सम्मुख जिस दिव्य-भव्य रूप में जैनागम की वैभव संपदा उपलब्ध है। उसके लिए हमें सर्वप्रथम गणधर गौतम तथा बाद में उन आचार्यों की उपकारी देन मानी जायेगी कि जिनके श्रुत एवं संकल्प प्रयासों से आज जिनवाणी का गौरव सुरक्षित है। इनमें वह विराट रहस्य उजागर है, जो कि समग्र विश्व के चराचर प्रकृति प्राणी में समाया हुआ है। आज जिनवाणी का ज्ञान-विज्ञान हमारे लिए नहीं होता, तो हमारी जीवन-साधना की क्या स्थिति होती ? हम आदिम प्राणी के रूप में

जीवन बिता रहे होते। "जीओ और जीने दो" का पारिभाषिक सूत्र कभी नहीं मिल सकता था। प्रकृति का जीवन ही मूलतः अस्त-व्यस्त हो गया होता।

जिन वाणी के पुण्य-योग से ही हम सुसंस्कृत सभ्यता के अधिकारी बने हैं। इसका महान चिंतन ही हमारा अवलंबन है। हम युगों-युगों तक कृतज्ञ रहेंगे, उन लब्धिसंपन्न निधि स्वामी गणधर गौतम के, जिनकी अनुपम कृपा-अनुकंपा से उनकी सहज स्फूर्त जिज्ञासा-संपदा से हम निहाल हो गये।

**परम पावन दुर्लभ प्रसंग** — उन्हीं गणधर गौतम के भी परिनिर्वाण को ढाई हजार वर्ष पूर्ण होने जा रहे हैं। उनके परिनिर्वाण महोत्सव का यह परम पावन दुर्लभ प्रसंग भी हमारे जीवन की एक मात्र ऐतिहासिक उपस्थिति है। जिनकी आयोजना के प्रति हमारा कर्त्तव्य हमें तुरन्त ही पुकार रहा है।

**आव्हान का स्वर** :— मेरा आव्हान के स्वरों में आग्रह है कि आईये! हम व्यक्तिशः सामाजिक एवं राष्ट्रीय स्तर पर अपने आराध्य प्रवर गणधर गौतम को ओजमयी समवेत भावांजलि समर्पित करें!

यहाँ "गणधर गौतम" नाम विशेष रूप से प्रयुक्त किया है। क्योंकि आगमों में तथा प्रसिद्धि में "गौतम" नाम से सुपरिचित है। वैसे "गणधर इन्द्रभूति २५०० वां परिनिर्वाण महोत्सव" नाम भी पूर्णतः सार्थक है।

**समारोह-सुझाव—**

इस समारोह के लिए जैन समाज राष्ट्रीय सम्मेलन के द्वारा राष्ट्रीय, प्रान्तीय, सामाजिक एवं जिला स्तरीय समितियाँ अति शीघ्र गठित हों। जिसमें सभी वर्ग के व्यक्तियों को सहर्ष सम्मिलित किया जाये।

यह राष्ट्रीय समिति "गणधर गौतम के २५००वें महोत्सव वर्ष" के राष्ट्रीय कार्यक्रमों की घोषणा करे। जिसके आधार पर रचनात्मक परिणति हो सके साथ ही उसमें सभी अपना-अपना उदार सहयोग प्रदान कर सकें।

यहाँ राष्ट्रीय समिति के राष्ट्रीय कार्यक्रमों की रूप-रेखा में सहायक हो सके, ऐसे प्रस्तावित सुझाव निम्नरूपेण उपस्थित किए जा रहे हैं।

(१) "**गणधर गौतम**" के जीवन चरित्र का आगमों के प्रसंगों सहित वृहद रूप से लेखन हो। दीक्षा पूर्व के जीवन की शोध भी महत्वपूर्ण होगी।

(२) "**गणधर गौतम**" की जिन-जिन आगमों में भगवान महावीर से की गई पृच्छायें संकलित हैं। उन आगमों का परिचय, उन पर आज के सन्दर्भ में विश्लेषण एवं उनके विशिष्ट तथ्यों पर अलग-अलग व्याख्या ग्रन्थ तैयार किये जायें।

(३) "गणधर गौतम शोध-अकादमी" स्थापित की जाये। जहाँ गणधर गौतम से संबंधित समग्र साहित्य का विशाल संग्रह हो। जिसके द्वारा "गणधर गौतम पृच्छा इनसाईक्लोपीडिया" जैसा ग्रंथ तैयार किया जाये।

(४) भगवान महावीर से हुई ग्यारह गणधरों की चर्चा-पृच्छा पर विशिष्ट व्याख्या ग्रन्थ तैयार हों।

(५) गणधर गौतम की पृच्छा संपदा पर विभिन्न स्थानों पर शोध-सेमिनार आयोजित हों जिसकी प्रत्येक विचार सामग्री के प्रकाशन की समुचित व्यवस्था हो।

(६) गणधर गौतम सम्बन्धी समग्र संस्कृत, प्राकृत स्तुतियों, छन्दों, गीतों, रासों एवं ढालों का एक वृहद संकलन प्रकाशित हो। इन शैलियों के अलग-अलग संकलन भी हो सकते हैं।

(७) गणधर गौतम जाप सप्ताह हर स्थानों पर आयोजित हों।

(८) आगम स्वाध्याय की रुचि—प्रवृत्ति को बढ़ाने का एक अभियान-सा चलाया जाये।

(९) प्रतिवर्ष गणधर गौतम जयन्ति राष्ट्रीय पैमाने पर मनाई जाये।

(१०) गणधर गौतम के द्वारा सम्बोधित चरित्र काव्यों का उपन्यास शैली में प्रकाशन हो

(११) आकाशवाणी से गणधर गौतम संबंधी स्तोत्र, छन्द एवं गीतों के प्रातः-कालीन प्रसारण कराये जायें। रेकार्ड भी बनवाई जाये।

(१२) गणधर गौतम से सम्बन्धित उनके जीवन संबंधी पहलुओं के साथ ही विभिन्न विचारों के प्रसारण आकाशवाणी से हो। रेडियो रूपक विभिन्न केन्द्रों से प्रसारित हों।

(१३) गणधर गौतम के २५०० वें निर्माण महोत्सव की स्मृति स्वरूप उनकी पृच्छा-सम्पदा पर ग्रन्थ स्मारिकायें एवं सोवेनियर आदि प्रकाशित हों।

(१४) "गणधर गौतम लब्धि-कोष" की स्थापना के द्वारा समाज के असहाय वर्ग की समस्याओं को हल किया जाये।

(१५) "गणधर गौतम ज्ञानालय" के रूप में जैन धर्म शिक्षण हेतु हर स्थानों पर श्रावक संघ रचनात्मक प्रयास करे। जिसके विशेष पाठ्य-ग्रन्थ निर्धारित किये जायें।

(१६) "गणधर गौतम" संबंधी साहित्य का विभिन्न भाषाओं में प्रणयन हों।

थी। ऋषभदेव का स्नेह जिस प्रकार अपने पुत्रों पर था, वैसा ही स्नेह अपनी पुत्रियों पर भी था। उन्होंने देखा कि पुरुष की तुलना में नारी का मानस अधिक स्थिर एवं शांत होता है। यही कारण था कि उन्होंने अपनी पुत्री ब्राह्मी को सर्वप्रथम अक्षर-ज्ञान दिया। ब्राह्मी अद्भुत प्रतिभाशाली थी। उसके मन में नवीनतम ज्ञान सीखने की प्रबल जिज्ञासा थी। वर्णमाला का प्रथम अक्षर उसने अपने हाथ से लिखा। यही कारण है कि हमारी लिपि आज भी ब्राह्मी लिपि के नाम से प्रसिद्ध है। ब्राह्मी ने ऋषभदेव से शिल्प, संगीत, चित्रकला, काव्य-कला आदि चौंसठ कलाएं सीखी और उनका प्रचार स्त्रियों में किया। उसका उद्देश्य यह था कि नारी जाति ज्ञान-विज्ञान, शिल्प-संगीत आदि कलाओं में प्रगति कर पुरुष जाति का मार्ग दर्शन करे। अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिये उसने कला और शिक्षा का प्रचार घर-घर किया। एक सम्पन्न राजकुमारी होकर भी उसने विलास को तिलांजलि दे दी और ब्रह्मचारिणी रहकर एक उपदेशिका के समान सादा जीवन व्यतीत करने लगी।

भगवान् ऋषभदेव तीर्थंकर बनने के उपरांत जब अयोध्या पधारे तो अन्यों के साथ ब्राह्मी और सुन्दरी भी भगवान के दर्शन करने आयी। यहाँ मरुदेवा को केवल-ज्ञान व मोक्षगमन हुआ था।

मरुदेवा का यकायक निर्वाण होने से भरत, ब्राह्मी, सुन्दरी आदि विव्हल हो उठे। सब उदास और खिन्न हो गये। मन विरक्त हो गया। यह विरक्ति भरत के मन में तो क्षण भर रही किन्तु ब्राह्मी एवं सुन्दरी के मन ने तो एकदम नया मोड़ ही ले लिया। दोनों बहनें आत्म-कल्याण के लिये साधना के पथ पर चलने को तैयार हो गई। ब्राह्मी तो सादा त्यागमय जीवन व्यतीत कर ही रही थी। राजसी वैभव का उस पर कोई प्रभाव नहीं था। उसने अपने भाई चक्रवर्ती भरत से कहा—'मैं पूज्य पिताश्री की भांति ही साधनामय जीवन व्यतीत करना चाहती हूँ। आपकी आज्ञा की आवश्यकता है। कृपाकर मुझे प्रव्रज्या ग्रहण करने की अनुमति प्रदान करने का कष्ट करें।'

भरत की आँखों में अश्रु छलछला उठे। उसका मन अपनी दादी के निर्वाण से पहले ही दुःखी था। उस पर बहन द्वारा दीक्षा की अनुमति मांगने से उसका दुःख दुगुना हो गया। पहले तो उसने अनुमति देने में आना-कानी की किन्तु जब उसने देखा कि ब्राह्मी अपने निर्णय पर अटल है तो उसे अनुमति देनी ही पड़ी। इसी अवसर पर सुन्दरी ने भी दीक्षा लेना चाहा था किन्तु भरत ने उसे अनुमति नहीं दी।

ब्राह्मी ने भगवान् ऋषभदेव की सेवा में उपस्थित होकर दीक्षा देने की प्रार्थना की। जब अनेक रानियों और राजकुमारियों ने ब्राह्मी को दीक्षाव्रत अंगीकार करते देखा तो उन्होंने भी ब्राह्मी के साथ ही दीक्षित होने का संकल्प किया और वे सब ब्राह्मी के साथ ही दीक्षित भी हो गई। इस प्रकार महासती ब्राह्मी नारी जगत की प्रथम शिक्षिका और अध्यात्म-पथ की प्रथम साधिका के रूप में हमारे सामने आती है। श्रमणी परम्परा की भी वही प्रथम महाश्रमणी बनीं।

# समाचार एवं सूचनाएँ

## नेल्लोर नगर : आन्ध्रप्रदेश : में
## अद्वितीय ऐतिहासिक अंजनशलाका एवं प्रतिष्ठा महोत्सव
## दो गच्छ के आचार्य-मुनिराज ने मिलकर कार्य किया

**प्रस्तोता : डा० प्रेमसिंह राठौड़**

आन्ध्रप्रदेश के नेल्लोर नगर में एक अद्वितीय ऐतिहासिक घटना घटी । सागर-गच्छीय परम पूज्य आचार्यदेव पद्मसागर सूरीश्वर जी महाराज साहब एवं त्रस्तुतिक गच्छ के पूज्य मुनिराज जयन्तविजय जी महाराज साहब ने मिलकर अंजनशलाका एवं प्रतिष्ठा का कार्य सम्पन्न किया । जैन धर्म के इतिहास में यह प्रथम घटना है, जो भविष्य में सदा समाज को प्रेरणा देती रहेगी । संप्रदायवाद के फैल रहे जहर के कारण जहां वातावरण विक्षुब्ध एवं संकुचित हो रहा है, वहां नेल्लौर का यह उदाहरण एकता, समन्वय, सहिष्णुता, भ्रातृत्व एवं प्रेम का इतना अनूठा है कि जिसने जैन एकता के भविष्य को उज्ज्वल बनाकर दिशा प्रदान की है । समस्त जैन समाज नत-मस्तक होकर परम पूज्य आचार्य-मुनिवर का अभिनन्दन करता है और नेल्लौर निवासियों के उनके सौभाग्य एवं गौरव के लिये बधाई देता है ।

इस समय नेल्लोर नगर में लगभग २०० जैन श्वेताम्बर मूर्तिपूजक संघ के श्रद्धालु घर हैं । परम पूज्य आचार्य देव पूर्णानन्द सूरीश्वरजी महाराज साहब की सद्प्रेरणा से नगर में प्रथम जिनालय निर्माण करने का निश्चय किया गया । भगवान महावीर के २५०० वें निर्वाण महोत्सव के अवसर पर पूज्य मुनिराज पद्मविजय जी महाराज साहब की निश्रा में मंदिर का शिलान्यास किया गया ।

आठ वर्षों में इस भव्य मंदिर का निर्माण कार्य पूरा हुआ नेल्लोर श्री संघ ने दोनों गच्छों के प्रसिद्ध प्रवचनकार परम पूज्य आचार्य देव पद्दसागर सूरीश्वरजी महाराज साहब एवं पूज्य मुनिप्रवर जयन्तविजय जी "मधुकर" के सान्निध्य में प्रपिष्ठा महोत्सव करने का निश्चय किया एवं आचार्य देव एवं मुनिप्रवरसे आग्रहपूर्वक विन्नती की । दोनों ने अपने वड़ीलों की अनुमति लेकर अपनी स्वीकृति प्रदान की । श्रीसंघ में हर्ष की लहर फैल गई और बड़े जोर-शोर, उत्साह-उमंग के साथ महोत्सव का कार्य शुरू किया गया ।

इस अवसर पर निम्न परम पूज्य आचार्य एवं मुनिमंडल ने पधार कर श्रीसंघ को उपकृत किया —

अभिधान राजेन्द्र वृहद विश्वकोश के निर्माता परम योगीन्द्राचार्य प्रभु श्रीमद् विजय राजेन्द्र सूरीश्वरजी म० साहब पट्ट प्रभावक चर्चा चक्रवर्ती श्रीमद् विजय धनचन्द्र सूरीश्वरजी, पट्टाभूषण साहित्य विशारद श्रीमद् विजय भूपेन्द्र सूरीश्वरजी पट्टालंकार व्या० वा० श्रीमद् विजय यतीन्द्र सूरीश्वर जी म०सा० के शिष्य एवं शान्तमूर्ति आचार्य श्रीमद् विजय विद्याचन्द्र सूरीश्वरजी महाराज साहब के आज्ञानुवर्ती मुनिराज जयन्तविजय जी "मधुकर" महाराज साहब, मुनिश्री विनय विजय जी महाराज साहब, मुनिश्री नित्यानन्द विजय जी महाराज साहब, मुनिश्री धर्मरत्न विजय जी महाराज साहब, मुनिश्री वीरेन्द्र विजय जी महाराज साहब, मुनिश्री हेमरत्न विजय जी महाराज साहब ।

पूज्य शास्त्र विशारद योगनिष्ठ १०८ ग्रन्थ प्रणेता शासन प्रभावक श्रीमद् आचार्य बुद्धिसागर सूरीश्वर जी महाराज साहब के पट्ट परम्परक परम पूज्य चारित्र चूड़ामणी शासन प्रभावक प्रखर वक्ता आचार्य देव श्रीमद् पद्मसागर सूरीश्वर जी महाराज साहब तथा उनके शिष्य प्रशिष्यादि गण, गणिवर्य श्री वर्द्धमानसागर जी म० सा० मुनिश्री अमृत सागर जी म० सा० मुनिश्री अरुणोदय सागर जी म० सा० मुनिश्री विनय सागर जी म० साहब, मुनिश्री देवेन्द्र सागर जी महाराज साहब, मुनिश्री मंगल सागर जी महाराज साहब, मुनिश्री निर्मल सागरजी म०सा मुनिश्री निर्वाण सागर जी महाराज साहब ।

महोत्सव के कुछ प्रमुख कार्यक्रम इस प्रकार थे, जो ज्ञानवर्द्धक होने के साथ-साथ बड़े ही मनमोहक एवं लोकप्रिय रहे—

१—दि० २३-११-८१ — नवग्रह, दश-दिक्पाल एवं अष्ट मंगल पाटला-पूजन ।

२—दि० २४-११-८१ — नन्दावर्त पूजन, भैरव पूजन तथा सौलह विद्यादेवी पूजन ।

३—दि० २५-११-८१ — वीस स्थानक एवं सिद्धचक्र पूजन ।

४—दि० २६-११-८१ — जिन प्रासाद, ध्वजदंड, कलश, अभिशेष ।

५—दि० २८-११-८१ — इन्द्र-इन्द्राणी एवं माता-पिता की स्थापना । च्यवन कल्याणक, माता को स्वप्न-दर्शन, व राज्यसभा में स्वप्नफल कथन एवं च्यवन कल्याणक का वर घोड़ा ।

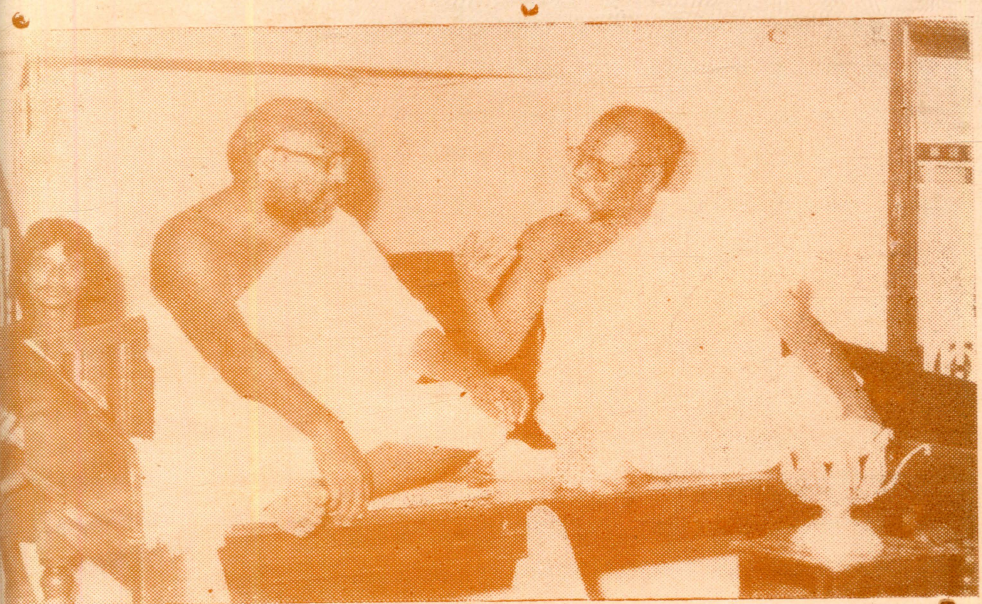

प्रवचन के पूर्व प. पूज्य आचार्य देव श्रीमद् पद्मसागर सूरीश्वरजी एवं
मुनिराज जयन्तविजयजी 'मधुकर' चर्चा करते हुए।

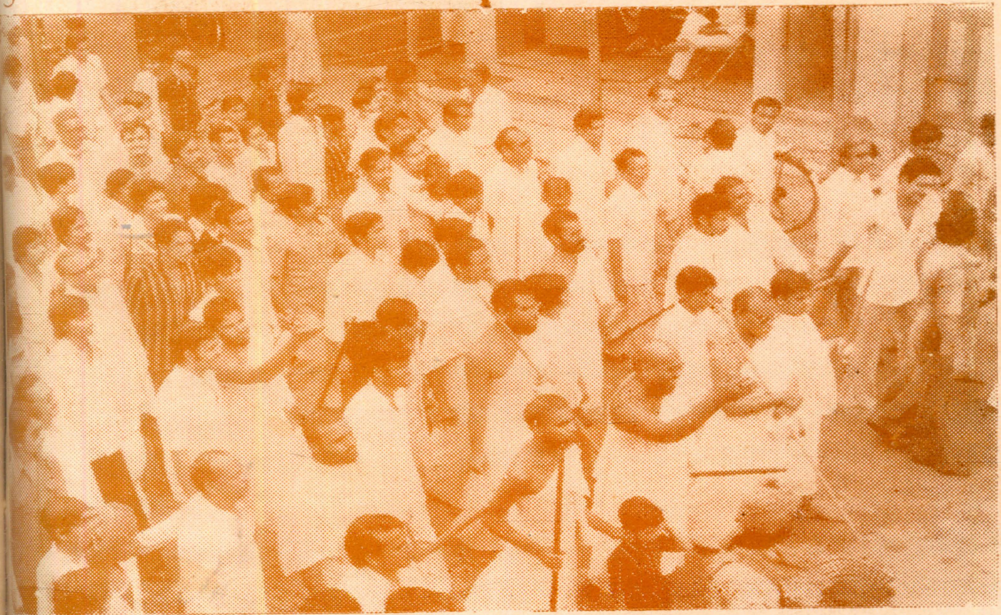

नेल्लोर वरघोड़ा में प. पूज्य आचार्य देव पद्मसागर सूरीश्वरजी एवं
मुनिराज जयन्तविजय जी 'मधुकर' तथा मुनिमंडल

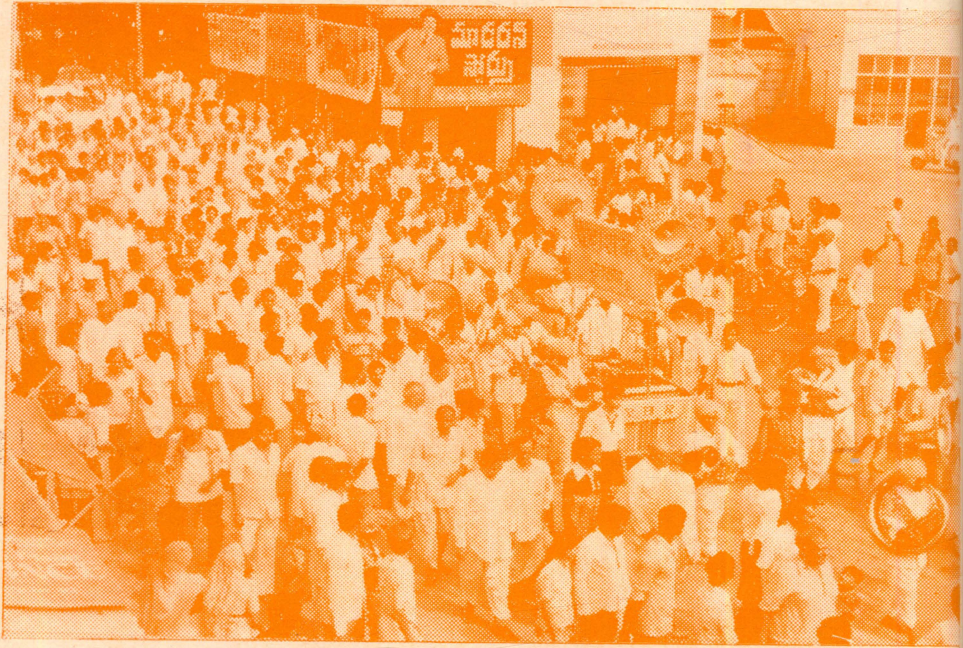

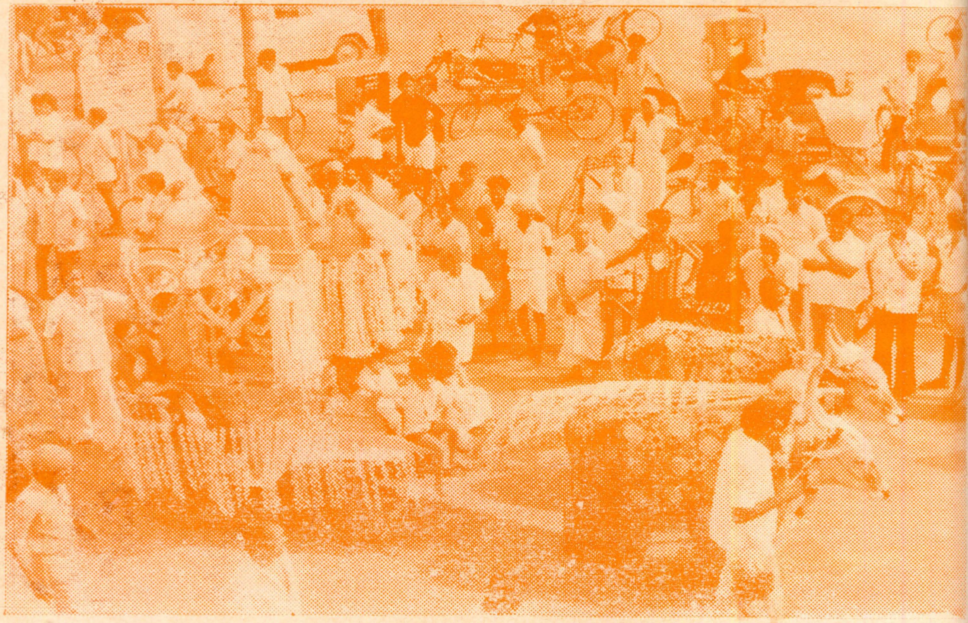

नेल्लोर प्रतिष्ठा के अवसर पर निकले वर-घोड़ा के दो आकर्षक विहंगम दृष्य

| | | |
|---|---|---|
| ६–दि० २९-११-८१ | — | प्रभु का जन्म कल्याणक एवं छप्पन दिक्कुमारिका द्वारा जन्मोत्सव, मेरू शिखर पर २५० अभिशेष व जन्म कल्याणक का वरघोड़ा । |
| ७–दि० ३०-११-८१ | — | प्रियवंदा दासी द्वारा बधाई । १०८ अभिशेष, सूर्य-चन्द्र दर्शन, भावी फलकथन, पालणा में झुलाना व नाम स्थापना । |
| ८–दि० १-१२-८१ | — | प्रभुजी का पाठशाला गमन, लग्न महोत्सव का वरघोड़ा, मामेरा भरना । |
| ९–दि० २-१२-८१ | — | प्रभुजी का राज्याभिषेक, नव लोकान्तिक देवों की प्रार्थना, दीक्षा-कल्याणक का महोत्सव एवं वरघोड़ा । रात्री में शुभ मुहूर्त में अधिवासना, समवसरण स्थापना, कैवल्यज्ञान कल्याणक एवं निर्वाण कल्याणक महोत्सव । |
| १०–दि० ३-१२-८१ | — | नूतन जिन बिम्बों का चैत्य प्रवेश तथा प्रात: ७ बजे प्रतिष्ठा महोत्सव विजय मुहूर्त में तथा अष्टोत्तरी शान्तिस्नात्र । |

मगसर सुदी ५ को रात्रि के पिछले प्रहर में नूतन जिन बिम्बों की आचार्यदेव एवं मुनिप्रवर दोनों ने अंजनशलाका विधि संपन्न की एवं मगसर सुदी ६ को प्रात: आठ बजकर ३४ मिनट पर बड़े हर्षोल्लास के साथ श्री श्रेयान्सनाथ आदि जिनबिम्बों को गद्दीनशीन : प्रतिष्ठित : किये गये । इसके बाद ध्वजदंड एवं कलशारोहण का कार्यक्रम सम्पन्न हुआ ।

इस अवसर पर निकला वरघोड़ा एक किलोमीटर लम्बा था जिसमें २० हजार स्त्री-पुरुष सम्मिलित हुए । नेल्लोर नगर में इतना बड़ा धार्मिक जुलूस पहले कभी नहीं निकला । हाथी, घोड़े, रथ, भजन-मंडलियां, राजा एवं राजा के दरबारियों की सवारी, इन्द्र-इन्द्राणियों का भव्य दर्शनीय स्वरूप, वरघोड़ा के प्रमुख आकर्षण थे । स्थानीय बैंड, हैदराबाद बैंड तथा रतलाम का प्रकाश बैंड अपने मधुर संगीत से बहुत ही लोकप्रिय हो रहे थे । प्रकाश बैंड की धार्मिक धुनों व गीतों पर जनता झूम-झूम कर थिरक रही थी ।

महोत्सव की सारी व्यवस्था बहुत ही सुन्दर थी । विनम्र कार्यकर्ताओं ने अपनी सेवाओं द्वारा सबके मन जीत लिये एवं सेवा कार्य का एक नया कीर्तिमान स्थापित किया । निम्न सेवा मंडलों का सेवा कार्य सदैव चिरस्मरणीय रहेगा—

१–श्री जैन नवयुवक मंडल, नेल्लोर।
२–श्री जैन महिला मंडल, नेल्लोर।
३–श्री जैन युवक मंडल विजयवाड़ा।
४–श्री जैन युवक आंगीमंडल नेल्लोर।
५–श्री चन्दा प्रभु जैन सेवा मंडल मद्रास।
६–श्री जैन बैंड एवं संगीत मंडल मद्रास।
७–श्री राजेन्द्र सूरी जैन परिषद मद्रास।

स्थानीय श्री संघ ने सारी व्यवस्था को सुचारू रूप से करने के लिये निम्न समितियों का गठन किया—

१–स्वागत समिति २–भोजन समिति, ३–शासन संपर्क समिति ४– सर्वोपरि प्रतिष्ठा महोत्सव समिति, ५–प्रकाश व्यवस्था समिति ६–जल व्यवस्था समिति ७–मंडप समिति ८–मंगलघर व्यवस्था समिति ९–बरतन व्यवस्था समिति १०–वरघोड़ा समिति ११–गुरु वैय्यावच्छ समिति ११–स्वयंसेवक व्यवस्था समिति आदि

महोत्सव समाप्त हुआ। जैन एकता का दृढ़ संकल्प लिये, फिर मिलने के आश्वासन का आदान-प्रदान करते हुवे, महोत्सव की मधुर यादें लेकर, नेल्लोर श्री संघ को बधाई देकर वीर प्रभु की जय-जयकार करते हुवे सब विदा हुए।

## शिष्टमंडल पूज्य मुनिराज द्वय जयन्तविजय जी एवं लक्ष्मणविजय जी महाराज साहब से मिला- दोनों मुनिराजों ने उत्तर भारत की ओर विहार करने का आश्वासन दिया

अध्यक्ष श्री गगलभाई के नेतृत्व में शिष्ट मंडल दिनांक ५ दिसंबर ८१ को नेल्लोर में पूज्य मुनिराज जयन्तविजय जी "मधुकर" से मिला। अहमदाबाद अधिवेशन के प्रस्तावों तथा भीनमाल में पूज्य मुनिराज हेमेन्द्रविजय जी महाराज साहब से जो चर्चाएें हुई उसकी जानकारी देते हुए मुनिराज से उत्तर भारत की ओर विहार करने की साग्रह विनन्ती की। पूज्य जयन्तविजय जी महाराज साहब ने बतलाया कि उन्हें हेमेन्द्रविजय जी महाराज का पत्र मिल गया है और आज आपका शिष्टमंडल भी मिला है। मुनिराज हेमेन्द्रविजयजी के पत्र और आपके द्वारा जो उत्तर भारत की ओर विहार करने की विनन्ती हुई है उसको ध्यान में रख कर हम उत्तर भारत की ओर विहार करेंगे।

यहाँ से शिष्टमंडल बैंगलोर गया और दिनांक ७ दिसंबर ८१ को पूज्य मुनिराज लक्ष्मणविजय जी महाराज साहब से मिला और उन्हें भी सारी परिस्थिति से

अवगत कराते हुए साग्रह उत्तरभारत की ओर विहार करने की विनंती की। पूज्य मुनिराज ने बतलाया कि उनके पास श्री हेमेन्द्रविजय जी का पत्र आ गया है और आपने भी विनन्ती की है। अभी मेरा स्वास्थ्य ठीक नहीं होने से दो-तीन सप्ताह बैंग्लोर में इलाज के लिए रहना पड़ेगा और बाद में मैं भी उत्तर भारत की ओर विहार कर दूंगा।

इस प्रकार गच्छीय मुनिमंडल के आपस में मिलने की बात तय हो गई है और आगे का कार्यक्रम पूज्य हेमेन्द्रविजय जी महाराज साहब से मिल कर समिति बनावेगी।

## पालीताणा में श्री राजेन्द्र जैन भवन धर्मशाला की नवनिर्मित भोजनशाला का उद्घाटन

कार्तिक पूर्णिमा के पुनीत पर्व पर श्री राजेन्द्र जैन भवन धर्मशाला पालीताणा का उद्घाटन धाणसा निवासी सेठ ओटमलजी धर्माजी द्वारा किया गया। ट्रस्ट मंडल के सदस्य इस अवसर पर उपस्थित थे।

इसी दिन श्री राजेन्द्र विहार दादावाड़ी में सेठ सुमेरमलजी साहब लुक्कड़ के सम्मान में एक सभा का आयोजन डा० प्रेमसिंह राठौड़ की अध्यक्षता में हुआ। इस वर्ष दादावाड़ी में चातुर्मास श्रीमान सेठ सुमेरमलजी साहब की ओर से कराया गया था। दादावाड़ी के ट्रस्टियों एवं श्रीसंघ के सदस्यों द्वारा उनका माला पहिनाकर अभिनंदन किया गया। सभा का संचालन ट्रस्टी श्री किशोरजी वर्धन ने किया।

## चुनाव सम्पन्न

मद्रास : स्थानीय अ. भा. श्री राजेन्द्र सूरि जैन परिषद की साधारण सभा की बैठक दिनांक ४-१०-८१ को आयोजित की गई, जिसमें वार्षिक रिपोर्ट प्रस्तुत की गई और नये पदाधिकारियों का निर्वाचन निर्विरोध किया गया।

दि. १-११-८१ को अध्यक्ष द्वारा 'स्नेह मिलन' दीपावली के उपलक्ष में रखा [illegible]या जिसमें श्री राजेन्द्र सूरि ट्रस्ट के ट्रस्टियों ने भी भाग लेकर कार्यक्रम की शोभा में प्रता[illegible]ी।

## अ. [illegible] जैन नवयुवक, परिषद, शाखा राजगढ़ द्वारा [illegible]व्यापक सामाजिक सर्वेक्षण

राजगढ़ (धार) : अ. भा. श्री राजेन्द्र जैन नवयुवक परिषद् शाखा राजगढ़ द्वारा अनेक महत्वाकांक्षी योजनाएं हाथ में ली है जिनमें श्री राजेन्द्र बचत योजना, सामाजिक सर्वेक्षण आदि प्रमुख हैं। बैंक प्रारम्भ होकर अनेक लोगों को ऋण भी वित-

रित किया जा चुका है। दि. २७-८-८१ को मात्र तीन घंटे में नगर का सामाजिक सर्वेक्षण भी किया गया। सम्पूर्ण सर्वेक्षण के दो महत्वपूर्ण परिणाम मिले। एक-युवकों की तुलना में युवतियों की संख्या कम है। दूसरा लगभग सम्पूर्ण समाज ही साक्षर है।

—कांतिलाल भण्डारी

## अ. भा. जैन निबंध प्रतियोगिता

श्री जैनरत्न नवयुवक सेवा संघ, भोपालगढ़ द्वारा संचालित अ. भा. जैन निबंध प्रतियोगिता समिति के तत्वावधान में "जैनधर्म और वर्तमान जैन समाज" विषय पर एक निबंध प्रतियोगिता का आयोजन किया गया है। निबन्ध न्यूनतम १५०० शब्दों में और अधिकतम २५०० शब्दों की सीमा में होना चाहिये। १५ से ३५ वर्ष की आयु वाले प्रतियोगी इस प्रतियोगिता में भाग ले सकते हैं। प्रथम पुरस्कार १०१), द्वितीय ७५), तृतीय ५१) तथा पांच प्रोत्साहन पुरस्कार प्रत्येक ११) रु. के हैं अंतिम तिथि ३१-१-१९८२ है। निबंध भेजने का पता—

पी. सी. ओस्तवाल
C/O OSTWAL & CO
43, Strootten Muthia Mudali
Street, MADRAS-1

## राजेन्द्र भवन का उद्घाटन

अखिल भारतीय श्री राजेन्द्र जैन नवयुवक परिषद द्वारा नव-निर्मित श्री राजेन्द्र भवन का उद्घाटन गरिमामय वातावरण में श्री छाजेड़ ने किया। इस अवसर पर परिषद के सदस्यों के अलावा स्थानीय जन-समुदाय के जैन, अजैन नागरिक भी भारी संख्या उपस्थित थे।

## गुरु सप्तमी के कार्यक्रम सम्पन्न

पालीताणा : स्थानीय श्रीसंघ ने पू. आचार्यदेव श्री विजय लब्धिचन्द्र सूरी-श्वरजी म. एवं मुनिराज श्री कमलविजय जी म. आदि मुनिमंडल तथा जैन [illegible] करने रंग विजयजी म. की निश्रा में गुरु जयंति के अवसर पर श्री जसवंत[illegible]था कि उन्हों, जिला पंचायत प्रमुख भावनगर की अध्यक्षता, माननी[illegible] शिष्टमंडल [illegible]विल, गृह प्रधान, गुजरात राज्य के मुख्य आतिथ्य एवं माननीय श्री [illegible]जो [illegible] जी गोहिल, नायब प्रधान, गुजरात राज्य की उपस्थिति में माननीय श्री नरेन्द्रसिंह जी झाला चेअरमेन वेअर हाऊसिंग बोर्ड के कर-कमलों से परम पूज्य गुरुदेव श्रीमद्विजय राजेन्द्र सूरिश्वर जी म. सा. के चित्र का अनावरण हुआ। इस शुभ अवसर पर विभिन्न सांस्कृतिक कार्यक्रम भी सम्पन्न हुए।